प्राचीन भारतीय गणित

की

ऐतिहासिक व सांस्कृतिक झलकियाँ

पढ़ें और सीखें योजना

प्राचीन भारतीय गणित
की
ऐतिहासिक व सांस्कृतिक झलकियाँ

राधाचरण गुप्त

विभागीय सहयोग
राम दुलार शुक्ल

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

मार्च 1997
फाल्गुन 1918
PD 10T NSY

एन.सी.ई.आर.टी. के प्रकाशन प्रभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैम्पस	108, 100 फीट रोड, होस्डेकेरे	नवजीवन ट्रस्ट भवन	सी.डब्ल्यू.सी. कैम्पस
श्री अरविंद मार्ग	हेली एक्सटेंशन, बनाशंकरी III इस्टेज	डाकघर नवजीवन	32, बी.टी. रोड, सुखचर
नई दिल्ली 110016	बैंगलूर 560085	अहमदाबाद 380014	24 परगना 743179

मूल्य: रु. 42.00

प्रकाशन प्रभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली 110016 द्वारा प्रकाशित तथा साई ग्राफिक्स, 252, ईस्ट ऑफ कैलाश, नई दिल्ली 110065 द्वारा लेजर टाइपसेट होकर इंडिया ऑफसेट प्रेस, A-1, मायापुरी इंडस्ट्रियल एरिया, फेस-I, नई दिल्ली 110064 द्वारा मुद्रित।

प्राक्कथन

शिक्षा का मुख्य उद्देश्य मनुष्य को बेहतर इंसान बनाना है। शिक्षा मनुष्य का शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक व नैतिक दिशा में विकास करके उसे एक सम्पूर्णता प्रदान करती है। हमारी शिक्षा-व्यवस्था में ऐसा तभी संभव हो पाएगा जब बच्चों में पूर्व-प्राथमिक व प्राथमिक स्तर से ही ऐसे मूल्यों की पौध लगाई जाए कि वे बौद्धिक और काल्पनिक क्षमताओं का विकास करना सीखने लगें।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् बच्चों में अध्ययन की क्षमता व रुचि दोनों का ही विकास करने के लिए सदा तत्पर रही है और समय-समय पर इस क्षेत्र में विभिन्न प्रयास व नए-नए प्रयोग करती रहती है। पाठ्यक्रम में निर्धारित पुस्तकों के प्रकाशन से भिन्न परिषद् ने बच्चों में अध्ययन प्रवृत्ति के विकास के लिए समय-समय पर पूरक अध्ययन सामग्री तथा उसके अंतर्गत प्रयोगात्मक स्तर पर कई पुस्तक-मालाएँ व परियोजनाएँ शुरू की हैं। इन सभी प्रयासों का मूल उद्देश्य है बच्चों का पुस्तकों से परिचय करना।

पूरक अध्ययन सामग्री के प्रकाशन को इस विचार से जन्म दिया गया है कि बच्चों को पाठ्यपुस्तकों की एकरसता से इतर कुछ ऐसी अध्ययन सामग्री भी दी जानी चाहिए जो कथ्य और कलेवर दोनों ही पक्षों में समृद्ध हो। साथ ही परोक्ष रूप से उन तक वांछित मानवीय मूल्य भी पहुँचाती हो।

लगभग 35 वर्ष से पूरक अध्ययन की पुस्तकों के प्रकाशन का काम जारी रखते हुए परिषद् में इस क्षेत्र में कुछ और अधिक करने की ललक थी और इसी का परिणाम है हमारी **पढ़ें और सीखें** योजना। इसके अंतर्गत प्रकाशित पुस्तकों के माध्यम से यह कोशिश की गई है कि बच्चे इस दुनिया में बसी हुई अनजान दुनिया से भी परिचित हों तथा

उन्हें अपने भीतर के संसार को जानने का भी मौका मिले। उनमें पुस्तकों के प्रति अपनापन व लगाव उपजे।

इन पुस्तकों में कथा साहित्य, भारतीय संस्कृति और इतिहास, विभिन्न महापुरुषों की जीवनियों व आत्मकथाओं आदि से लेकर विज्ञान के क्षेत्र में हो रहे आधुनिकतम आविष्कारों व विकासकारी गतिविधियों तथा जनसंख्या शिक्षा तक का फैलाव समेटा गया है। पुस्तकों के माध्यम से अपने बाल व किशोर पाठकों को परिषद् सामाजिक जागरूकता, धर्म-निरपेक्षता और वैज्ञानिक मानवतावाद सरीखे मूल्य भी दे रही है।

पढ़ें और सीखें पुस्तक-माला के अंतर्गत पाठ्यक्रम की पुस्तकों से कुछ हटकर तैयार की जाने वाली विज्ञान की पुस्तकों का उद्देश्य है पाठकों को वैज्ञानिक विषयों की सही जानकारी देना तथा उनमें वैज्ञानिक अभिरुचि का विकास करना। आशा है प्रो. राधाचरण गुप्त द्वारा लिखित प्रस्तुत पुस्तक **प्राचीन भारतीय गणित की ऐतिहासिक व सांस्कृतिक झलकियाँ** हमारे पाठकों के लिए आनंदप्रद व उपयोगी सिद्ध होगी।

पढ़ें और सीखें पुस्तक-माला के अंतर्गत प्रकाशित पुस्तकों को और भी उपयोगी बनाने की दिशा में दिए गए हर सुझाव का परिषद् स्वागत करेगी।

अशोक कुमार शर्मा

निदेशक

नई दिल्ली

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

आमुख

पढ़ें और सीखें योजना के अंतर्गत अब तक काफी पुस्तकें प्रकाशित की जा चुकी हैं। इस योजना के अंतर्गत विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों जैसे भौतिकी, रसायन, गणित, पर्यावरण, अंतरिक्ष एवं ब्रह्मांड विज्ञान, नाभिकीय एवं सौर ऊर्जा, आयुर्विज्ञान, समुद्र विज्ञान, राकेटरी, कम्प्यूटर, बायोटेक्नालॉजी, इंजीनियरिंग आदि में पुस्तकों का निर्माण हुआ है । विज्ञान के अन्य बहुत से नए क्षेत्रों में पुस्तकों का लिखना जारी है। विज्ञान के क्षेत्र में तैयार की जाने वाली इन पुस्तकों के लेखन में हमारे देश के जाने माने वैज्ञानिक सक्रिय योग दे रहे हैं और वे अपनी वैज्ञानिक अनुभूतियों को सरल एवं सुरुचिपूर्ण भाषा में बच्चों के लिए प्रस्तुत कर रहे हैं। देश के इन लब्धप्रतिष्ठ वैज्ञानिकों को योजना में सम्मिलित करने का मुख्य उद्देश्य यह है कि इन पुस्तकों में लिखी गई विषयवस्तु प्रामाणिक होगी तथा हमारे बच्चे यह महसूस करेंगे कि देश के जाने माने वैज्ञानिक उनके लिए उनके स्तर पर उतरकर विज्ञान के गूढ़तम रहस्यों को सुंदर एवं सरल भाषा में प्रस्तुत करने के लिए कृत संकल्प हैं। इससे बच्चों को, जो हमारे भावी वैज्ञानिक हैं, विज्ञान के क्षेत्र में बहुत अधिक प्रोत्साहन मिलेगा। विज्ञान की इन पुस्तकों के द्वारा हमें पूर्ण आशा है कि बच्चों को आधुनिकतम वैज्ञानिक विषयों की सही जानकारी मिलेगी, साथ ही उनके अंदर एक वैज्ञानिक मानसिकता भी पैदा होगी।

प्रस्तुत पुस्तक **प्राचीन भारतीय गणित की ऐतिहासिक व सांस्कृतिक झलकियाँ** के लेखन के लिए प्रो. राधाचरण गुप्त ने हमारा निमंत्रण स्वीकार किया जिसके लिए हम उनके अत्यन्त आभारी हैं। इस योजना के अंतर्गत तैयार हो रही विज्ञान की पुस्तकों के लेखन का मार्गदर्शन दिल्ली विश्वविद्यालय के भूतपूर्व कुलपति प्रो. रामचरण मेहरोत्रा कर रहे हैं।

विज्ञान की पुस्तकों के लेखन के संयोजन एवं अंतिम संपादन आदि का दायित्व विज्ञान एवं गणित शिक्षा विभाग के अध्यक्ष प्रो. राम दुलार शुक्ल वहन कर हैं।

मैं प्रो. रामचरण मेहरोत्रा और अपने सहयोगी प्रो. शुक्ल को हार्दिक धन्यवाद एवं बधाई देता हूँ।

इस पुस्तक को इतने अच्छे ढंग से प्रकाशित करने के लिए मैं परिषद् के प्रकाशन प्रभाग के कार्यकर्ताओं, विशेषकर विभागाध्यक्ष श्री आर. एस. सक्सेना को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

इस माला की पुस्तकों पर बच्चों, अध्यापकों एवं बच्चों के माता-पिता की प्रतिक्रिया का हम स्वागत करेंगे ताकि इन पुस्तकों को और भी अधिक उपयोगी बनाने में हमें सहयोग मिल सके।

अमर नाथ महेश्वरी

संयुक्त निदेशक

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण प्ररिषद्

दो शब्द

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (एन.सी.ई.आर.टी) की **पढ़ें और सीखें** योजना के अंतर्गत यह एक छोटा-सा प्रयास है। जब परिषद् के प्रगतिशील निदेशक डॉ. अशोक कुमार शर्मा ने मुझे इस दिशा में विज्ञान के विषयों का कार्यभार संभालने के लिए आमंत्रित किया तो अपने वैज्ञानिक मित्रों की अतिव्यस्तता के कारण यह उत्तरदायित्व स्वीकार करने में मुझे संकोच था।

इस दिशा में मेरा प्रयास रहा है कि विज्ञान के विभिन्न विषयों के जाने-माने विद्वानों को इस सराहनीय कार्य के लिए निमंत्रित कर सकूँ। ऐसा मेरा विश्वास है कि खोज और अनुसंधान की आनंदपूर्ण अनुभूतियों वाले वैज्ञानिक ही अपने आनंद की एक झलक बच्चों तक पहुँचा सकते हैं। मैं उनका हृदय से आभारी हूँ कि उन्होंने अंकुरित होने वाली पीढ़ी के लिए अपने बहुमूल्य समय में से कुछ क्षण निकालने का प्रयास किया। बालक राष्ट्र की सबसे बहुमूल्य और महत्वपूर्ण निधि है और मेरे लिए यह किंचित आश्चर्य और संतोष की बात है कि हमारे इतने लब्धप्रतिष्ठ और अत्यंत व्यस्त वैज्ञानिक बच्चों के लिए थोड़ा परिश्रम करने के लिए सहर्ष मान गए हैं। मैं सभी वैज्ञानिक मित्रों के लिए हृदय से आभारी हूँ।

इन पुस्तकों की तैयारी में हमारा मुख्य ध्येय रहा है कि विषय ऐसी शैली में प्रस्तुत किया जाए कि बच्चे स्वयं इसकी ओर आकर्षित हों, साथ ही भाषा इतनी सरल हो कि बच्चों को इनके अध्ययन से विज्ञान के गूढ़तम रहस्यों को समझने में कोई कठिनाई न हो। इन पुस्तकों के पढ़ने से उनमें अधिक पढ़ने की रुचि पैदा हो, उनके नैसर्गिक कौतूहल में वृद्धि हो जिससे ऐसे कौतूहल और उसके समाधान के लिए स्वप्रयत्न उनके जीवन का

एक अंग बन जाए।

यह योजना परिषद् के वर्तमान निदेशक डॉ. अशोक कुमार शर्मा की प्रेरणा से चल रही है। मैं उन्हें इसके लिए बधाई और धन्यवाद देता हूँ।

प्रो. राधाचरण गुप्त ने इस पुस्तक को लिखने के लिए मेरा अनुरोध स्वीकार किया जिसके लिए मैं हृदय से आभारी हूँ। परिषद् के विज्ञान एवं गणित शिक्षा विभाग के अध्यक्ष प्रो. राम दुलार शुक्ल विज्ञान की पुस्तकों के लेखन से संबंधित योजना के संयोजक एवं संपादक हैं और बहुत परिश्रम और कुशलता से अपना कार्य कर रहे हैं। प्रो. अमरनाथ महेश्वरी **पढ़ें और सीखें** योजना के संचालक हैं। मैं इन दोनों को हृदय से धन्यवाद देता हूँ।

आशा है कि ऐसी पुस्तकों से हमारी नई पीढ़ी की बाल्यकाल ही में वैज्ञानिक मानसिकता का शुभारंभ हो सकेगा और विज्ञान के नवीनतम ज्ञान के साथ ही साथ उन्हें अपने देश की प्रगतियों एवं वैज्ञानिकों के कार्य की झलक मिल सकेगी जिससे उनमें अपने राष्ट्र के प्रति गौरव की भावना का भी सृजन होगा।

राधाचरण मेहरोत्रा

अध्यक्ष

पढ़ें और सीखें योजना

(विज्ञान)

प्रो० राधाचरण गुप्त का परिचय

सन् 1935 में जन्मे श्री राधाचरण गुप्त ने लखनऊ विश्वविद्यालय से दो स्वर्ण पदक प्राप्त किये जिनमें से एक एम.एससी. (1957) में प्रथम स्थान पाने के कारण और दूसरा खेलकूद में दक्षता के कारण। सन् 1971 में राँची विश्वविद्यालय से गणित के इतिहास में पीएच.डी. प्राप्त करने के बाद इसी क्षेत्र में विस्तृत शोध का कार्य करते रहे। सन् 1972 में डॉ. गुप्त गणित के इतिहास सम्बन्धी अन्तर्राष्ट्रीय आयोग में भारतीय प्रतिनिधि नियुक्त हुए।

सन् 1979 से प्रो. गुप्त **गणित भारती** (ISSN 0970-0307) नाम की पत्रिका का सफल सम्पादन कर रहे हैं। इन्होंने भारतीय गणित पर लगभग 400 लेख प्रकाशित करके उसका देश-विदेश में प्रचार और प्रसार किया। सन् 1995 में प्रो. गुप्त को अन्तर्राष्ट्रीय अकादमी ऑफ वैज्ञानिकी-इतिहास का सदस्य चुना गया और 1996 में भारतीय विज्ञान परिषद् ने उनको **डिस्टिंग्विस्ड सर्विस अवार्ड** से सम्मानित किया।

गांधी जी का जन्तर

तुम्हें एक जन्तर देता हूं। जब भी तुम्हें सन्देह हो या तुम्हारा अहम् तुम पर हावी होने लगे, तो यह कसौटी आजमाओ :

जो सबसे गरीब और कमजोर आदमी तुमने देखा हो, उसकी शकल याद करो और अपने दिल से पूछो कि जो कदम उठाने का तुम विचार कर रहे हो, वह उस आदमी के लिए कितना उपयोगी होगा। क्या उससे उसे कुछ लाभ पहुंचेगा? क्या उससे वह अपने ही जीवन और भाग्य पर कुछ काबू रख सकेगा? यानि क्या उससे उन करोड़ों लोगों को स्वराज्य मिल सकेगा जिनके पेट भूखे हैं और आतमा अतृप्त है?

तब तुम देखोगे कि तुम्हारा सन्देह मिट रहा है और अहम् समाप्त होता जा रहा है।

मो क गांधी

विषय-सूची

प्राक्कथन	v
आमुख	vii
दो शब्द	ix
लेखक परिचय	xi
1. जब लीलावती का विवाह न हो सका	1
2. शतरंज के आविष्कार का विचित्र इनाम	16
3. बड़ी-बड़ी संख्याओं का देश भारत	27
4. भारतीय अंकों की विजय	40
5. होरस की आँख के टुकड़े	55
6. सर्वव्यापी त्रैराशिक	73
7. सूक्ष्म गणित से कामनाओं की पूर्ति	88
8. भारतीय जीवा की भ्रमण यात्रा	102
9. प्राचीन भारत के महान गणितज्ञ आचार्य आर्यभट	114
10. चीन में भारतीय गणित, ज्योतिष और ज्योतिषी	133

अध्याय 1

जब लीलावती का विवाह न हो सका

लीलावती की जन्मपत्री देखकर ज्योतिषियों ने भविष्यवाणी की थी कि वह आजीवन अविवाहित रहेगी, क्योंकि, ब्रह्मा ने ऐसा कोई शुभ मुहूर्त नहीं बनाया जब उसका पाणिग्रहण किया जा सके।

उसके पिता भास्कराचार्य ईसवी सन् की 12वीं शताब्दी के एक महान् गणितज्ञ और ज्योतिषी थे। उन्होंने स्वयं लीलावती को गणित सिखाया। किशोरावस्था प्राप्त होते-होते वह रूपवती होने के साथ गणित में भी निपुण हो गई। सुंदर व सर्वगुण सम्पन्न होने पर भी अपनी इकलौती पुत्री के आजन्म कुमारी रहने की देववाणी से भास्कराचार्य को चिंता हुई।

जब लीलावती विवाह योग्य हुई तब भास्कराचार्य ने स्वयं उसकी जन्मपत्री का बारीकी से अध्ययन किया। सूक्ष्म गणित लगाकर अंततः उन्होंने एक ऐसे शुभ मुहूर्त का पता लगा ही लिया जब विवाह हो सकता था। फिर क्या था, शीघ्र एक सुयोग्य वर का चयन किया गया। विवाह का दिन आया। धूमधाम से बरात आई। उसका स्वागत हुआ।

सुसज्जित विवाहमण्डप तैयार था। सब लोग हर्ष और उल्लास से आनन्द ले रहे थे। वर और वधू चमकती हुई पोशाकों में अपने-अपने आसनों पर विराजमान थे



चित्र 1.1 लीलावती अपने पिता से गणित सीख रही है

और सामने पुरोहित जी भी। सभी उस पावन बेला की बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा में थे जिसमें कन्यादान सम्पन्न होना था।

उस शुभ समय का पता लगाने के लिए मण्डप में एक जलघड़ी लगाई गई थी। पानी से भरे बरतन में तैरता हुआ धातु का एक अर्धगोलाकार कटोरा था जिसकी पेंदी में एक छोटा-सा छेद था। इस छेद से होकर बरतन का पानी धीरे-धीरे कटोरे में आ रहा था। इस जलघड़ी को इस तरह से लगाया गया था कि जलापूर्ति से जैसे ही कटोरा डूबे, वैसे ही उस क्षण का शुभारम्भ हो जिसमें वेदोच्चारण से विवाह सम्पन्न होना था।

झिलमिलाते मोतियों से जड़ी सुंदर साड़ी में सुसज्जित लीलावती का मुख ऐसे दिख रहा था जैसे तारों के बीच चंद्रमा। उसके लिए तो वह क्षण सबसे महत्वपूर्ण था क्योंकि जीवन

साथी पाने की उसकी अभिलाषा पूरी होने जा रही थी। वह पास ही रखी जलघड़ी की ओर झाँककर बड़ी उत्सुकता से कटोरे को बार-बार देख रही थी।

भास्कराचार्य की भी बेचैनी कम न थी। वह जानते थे कि बड़ी कठिन गणना से निकाला गया वह क्षण यदि हाथ से निकल गया तो बड़े दुर्भाग्य की बात होगी। इसलिए अनेक बार उन्होंने उस क्षण के बारे में समय बेध करने वाले वृद्ध ज्योतिषी वत्सराज से जिज्ञासा की। अन्य लोग भी पूछताछ कर रहे थे क्योंकि कटोरे के भरने में कुछ विलम्ब-सा लग रहा था। कौतूहलपूर्ण उत्सुकता काफी बढ़ गयी थी।

तभी वत्सराज, कटोरे की ओर ध्यान से देखने के बाद, उच्च्य स्वर से चिल्लाने लगे। अकस्मात् सन्नाटा छा गया, मण्डप का कोलाहलपूर्ण वातावरण शांत स्तब्धता में बदल गया।

वत्सराज ने आंशिक भरे हुए कटोरे को जल से ऊपर उठाया और घोषणा की "वह शुभ क्षण तो बीत चुका है"। वास्तव में कटोरे का छिद्र बन्द हो गया था और उसमें पानी का प्रवेश होना रुक चुका था।

कैसे ? हुआ यह था कि लीलावती की साड़ी से अलग होकर एक मोती अनजाने में उस कटोरे में गिर गया था जिसे वह झाँक कर देखती रहती थी। दुर्भाग्यवश, उस मोती से छिद्र बंद हो गया। इस प्रकार पानी का अन्तर्वाह रुक गया लेकिन समय का प्रवाह जारी रहा। बलवान काल की गति किसी के रोकने से नहीं रुकती। परिणाम चाहे कुछ हो। यह अनहोनी घटना क्यों हुई ? शायद इसलिए कि लीलावती के भाग्य में विधाता ने विवाह लिखा ही नहीं था जैसा कि उसके जन्म के समय ज्योतिषियों ने कहा था। मण्डप में जमा लोग इसे विधि का विचित्र विधान ही मान रहे थे।

उधर लीलावती फूट-फूट कर रोने लगी थी। दुष्ट कटोरा तो बरतन के पानी में नहीं डूबा, लेकिन उसका कोमल मन शोक के अथाह महासागर में डूब चुका था। एक युवती के लिए जीवनपर्यन्त अविवाहित रहने से बड़ा दुःख और क्या हो सकता है। विधाता ने एक दुलहन के सुनहरे स्वप्न को आँसुओं में बदल दिया।

"मत रोओ बेटी", भास्कराचार्य ने रुँधे गले से कहा, "भगवान की ऐसी ही इच्छा थी"। उन्होंने अपनी प्यारी बिटिया को अनेक प्रकार से समझाया। आखिर विधि के विधान को

कौन टाल सकता है।

"लिखितमपिललाटे प्रोज्झितुं कः समर्थः"

(हितोपदेश, 1, 21)

दुखित लीलावती को मानसिक शांति व सान्त्वना देने के लिए भास्कराचार्य ने एक और अनूठी बात उससे कही। वह यह थी कि पाटी-गणित के जिस सुंदर व उपयोगी संस्कृत ग्रन्थ की रचना वह करने वाले हैं उसका नाम अपनी प्रिय पुत्री के नाम पर "लीलावती" ही रखेंगे। इस प्रकार भास्कराचार्य ने अपनी बेटी को उस दुर्भाग्यपूर्ण घटना के कष्टों से भरे दुष्परिणाम झेलने के लिए धीरज बँधाया जिसने उसे प्रणयबन्धन में बँधने से रोक दिया था।

लीलावती बहुत से इन्द्रिय भोगों और सांसारिक सुखों से तो वंचित रही, लेकिन उसका नाम लीलावती ग्रन्थ द्वारा इस संसार में हमेशा के लिये अमर हो गया।

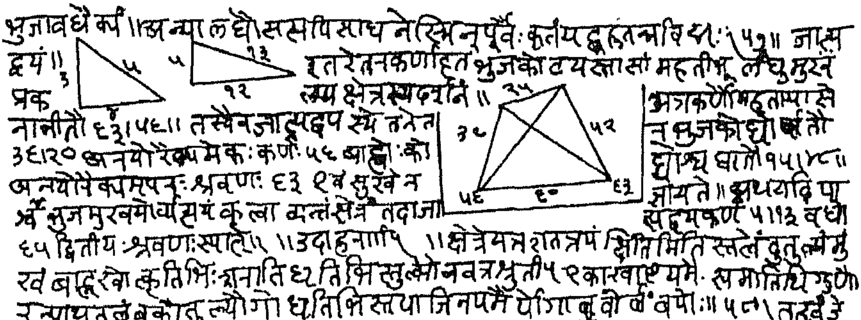
आहार निद्राभय मैथुनञ्च,
सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम् ।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषः
धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः।

अर्थात्.

"खाना-पीना-सोना, भय तथा सन्तानोत्पत्ति यह मनुष्य एवं पशु, दोनों में समान होते हैं। लेकिन मनुष्य की विशेषता धर्म पालन में है, जिसके बिना वह पशु के समान है।"

भारतीय गणित की सबसे लोकप्रिय पुस्तक लीलावती

लीलावती पुस्तक के नामकरण की ऊपर कही गई रोचक कहानी में कितना ऐतिहासिक आधार है, यह तो निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। लेकिन यह निश्चित है कि उसकी परम्परा सदियों पुरानी है। मुगल सम्राट अकबर के आदेश से उनके दरबारी कवि फैजी ने ईसवी सन् 1587 में, उस समय की दरबारी भाषा फारसी में *लीलावती* का अनुवाद



चित्र 1.2 लीलावती की हस्तलिपि का एक पृष्ठ

किया था। फैजी ने अपने अनुवाद की भूमिका में लीलावती के नामकरण की इस कहानी का वर्णन किया है, जिससे उसकी प्राचीनता का पता चलता है।

रॉयल मिलिटरी एकेडेमी (वूलबिच) में गणित के प्राध्यापक चार्ल्स हटन ने 1812 ई. में इस कहानी का अंग्रेजी अनुवाद लंदन से प्रकाशित किया था। यूरोपीय भाषाओं में तो क्या शायद किसी भी भाषा में यह प्रथम अनुवाद था। हटन (Hutton) का अनुवाद, Tracts on Mathematical and Philosophical Subjects के दूसरे खण्ड में छपा था।

लीलावती पढ़ने से एक तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि वह "लीलावती" नामक सुन्दर युवती को सम्बोधित करके लिखा गया था। उदाहरण के लिये भास्कराचार्य का पहला उद्देशक (प्रश्न) देखिये जो उन्हीं के शब्दों में इस प्रकार है—

अये बाले लीलावति मतिमति ब्रूहि सहितान्
द्विपञ्चद्वात्रिंशत्त्रिनवतिशताष्टादश दश ।
शतोपेतानेतानयुतवियुताश्चापि वद मे
यदि व्यक्ते युक्तिव्यवकलनमार्गेऽसि कुशला ।।

अर्थात्

"हे बाले बुद्धिमती लीलावती! यदि तुम अंकों के जोड़ने व घटाने में कुशल हो तो 2,5,32,193, 18, 10 और 100 का योगफल बताओ। मुझे यह भी बताओ कि उस जोड़

को 1000 में से घटाने पर शेष क्या होगा।"

स्पष्ट है कि प्रश्न किसी लड़की "लीलावती" से किया गया है।

हमारे देश में इस तरह से पढ़ने और ग्रन्थ लिखने की परम्परा हज़ारों साल पुरानी है। जैनियों के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव ने अपनी पुत्री सुन्दरी को गणित की शिक्षा दी थी। प्राचीन गणित की पुस्तक *बक्षाली पोथी* में, जो मूलरूप में अब ऑक्सफोर्ड के बोदलियन पुस्तकालय में जमा है, किसी "सुन्दरी" को सम्बोधित एक प्रश्न है।

धनपाल ने 972 ई. में अपनी बहन सुन्दरी के लिये धारानगरी में एक प्राकृत कोश की रचना की थी।

"सत्यनारायण कथा" में वर्णित लीलावती-कलावती की कहानी को सभी जानते होंगे। लेकिन कोऊहल द्वारा महाराष्ट्री प्राकृत में रचित *लीलावती काव्य* (ई. 8वीं सदी) का नाम भी सुन लीजिए।

संभव है कि प्राचीन महाराष्ट्र-कर्णाट क्षेत्र निवासी भास्कराचार्य द्वारा लीलावती ग्रन्थ के नामकरण में परम्पराओं की पृष्ठभूमि रही हो। वैसे कुछ अन्य मत भी हैं।

लीलावती भारतीय गणित का सर्वाधिक लोकप्रिय ग्रन्थ है साथ ही, विश्वगणित के इतिहास में भी उसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसमें गणित जैसे नीरस कहे जाने वाले विषय को भी सरस काव्य का रूप दिया गया हैं। प्राचीन भारत में जबकि उच्च शिक्षा का माध्यम संस्कृत भाषा थी, *लीलावती* विद्वानों को आनन्दित कर देती थी। पाठक चाहे गणित प्रेमी हो या प्राच्य साहित्य प्रेमी, *लीलावती* पढ़ते ही वह मुग्ध होकर उसके प्रति आकर्षित हो जाता है। संस्कृत माध्यम से गणित और ज्योतिष पढ़ने वाले विद्यार्थियों के लिए तो वह आज भी एक उपयुक्त पाठ्यपुस्तक बनी हुई है ।

आइए कुछ उदाहरण देखें जिससे *लीलावती* की रोचकता का पता लगता है। थोड़ी-सी जगह में ज्यादा सामग्री आ जाए इसलिए प्रथम उदाहरण के बाद प्रश्नों के केवल हिंदी अनुवाद दिए गए हैं।

प्रश्नावली

1. गुणा करने की अनेक रीतियाँ बताने के बाद भास्कराचार्य निम्नलिखित उद्देशक देते हैं –

बाले बालकुरङ्ग लोलनयने लीलावति प्रोच्यतां
पञ्चत्र्येकमिता दिवाकरगुणा अङ्काः कति स्युर्यदि ।
रूपस्थानविभागखण्डगुणने कल्याऽसि कल्याणिनि

अर्थात्

"हे बाले, बाल मृग के समान सुंदर नयनवाली कल्याणिनी लीलावती! यदि तुम रूप, स्थान-विभाग और खण्ड गुणन की रीतियाँ जानती हो तो बताओ कि 135 को "सूर्य" (अर्थात् 12) से गुणा करने पर कितनी संख्या आयेगी।" (उत्तर 1620)

2. व्यस्त विधि में गुणकार, भागहार हो जाता है और भागहार, गुणकार, जिसे जोड़ना है वह घटाया जाता है और जिसे घटाना है वह जोड़ा जाता है, इत्यादि। क्रियाएँ उल्टे क्रम में की जाती हैं। व्यस्त विधि पर लीलावती का उदाहरण इस प्रकार है- "हे चंचलनयन वाली बाला! यदि तुम विलोम विधि जानती हो तो बताओ कि वह कौन संख्या है जिसे 3 से गुणाकर, गुणनफल को अपने ही 3/4 से बढ़ाकर 7 से भाग दिया जाए। भागफल को अपने ही तृतीयांश से कम करके वर्ग किया जाए। फिर 52 घटाकर, मूल लेकर, 8 जोड़ा जाए और अंत में 10 का भाग देने से 2 प्राप्त हो जाए"। (उत्तर 28)

3. इष्ट कर्म का नियम भारत में आविष्कृत होकर बाद में अरबों के माध्यम से यूरोप पहुँचा जहाँ इसे रेगुला फाल्सी (Regula Falsi या Rule of the False Position) कहा गया। प्राचीन विधि की जगह बीजगणित से प्रश्न सरलता से हल किया जा सकता है। भास्कराचार्य ने एक उदाहरण में रोचकता इस प्रकार भर दी–

"निर्मल कमलों के जिस समूह के 1/3, 1/5 और 1/6 भाग से क्रमशः शिव, विष्णु और सूर्य की, 1/4 भाग से देवी की तथा शेष 6 कमलों से गुरु चरणों की पूजा की गई, उस (कमल समूह) के सम्पूर्ण कमलों की संख्या शीघ्र बताओ"।

(उत्तर 120)

4. *लीलावती* के कुछ प्रश्न वर्ग समीकरण को हल करने की विधि से सरलतापूर्वक सुलझाए जा सकते हैं। जैसे– "रण में क्रुद्ध होकर अर्जुन ने कर्ण को मारने के लिए बाण चलाए। आधे बाणों से उस (कर्ण) के बाणों का निवारण करके, समस्त बाणों के वर्गमूल के चौगुने से उसके घोड़ों को मार डाला। 6 बाणों से शल्य का वध किया। 3 बाणों से कर्ण के छत्र, ध्वजा और धनुष का खण्डन किया तथा अन्तिम बाण से उसका सिर काट डाला। बताओ अर्जुन ने कितने बाण चलाए।"मानो गणित में महाभारत युद्ध छिड़ गया हो। (उत्तर 100)

5. त्रैराशिक (Rule of Three) जितना सरल है उतना ही उपयोगी भी है। सभी प्रकार के प्रश्न में उसकी उपयोगिता देखकर भास्कराचार्य ने उसकी अत्यधिक प्रशंसा की है (अध्याय 6 देखें) । उनका एक सरल प्रश्न इस प्रकार है–

"हे वणिक वर! यदि 3/7 निष्क में $2\frac{1}{2}$पल कुङ्कुम मिलती है, तो शीघ्र बताओ कि 9 निष्क में कितनी मिलेगी।" (उत्तर $52\frac{1}{2}$ पल)

नोट *- पल वजन की इकाई थी और निष्क मुद्रा की।* (आगे नौवाँ उदाहरण देखें)

6. *लीलावती* में पञ्चराशिक, सप्तराशिक, नवराशिक तथा एकादशराशिक पर भी प्रश्न हैं जिन्हें सही अनुपात लगाकर त्रैराशिक की तरह हल किए जा सकते हैं। नवराशिक का उदाहरण —

"हे मित्र! 12 अंगुल मोटे, 16 अंगुल चौड़े तथा 14 हाथ लम्बे 30 पटियों का मूल्य 100 निष्क है, तो 8 अंगुल मोटे, 12 अंगुल चौड़े और 10 हाथ लम्बे 14 पटियों का मूल्य क्या होगा।" (उत्तर $16\frac{2}{3}$ निष्क)

7. बिना मुद्रा (currency) के वस्तुओं के विनिमय (exchange) की प्रथा बहुत प्राचीन है, जिसे उस समय भाण्ड प्रति भाण्ड (barter) कहते थे। इस पर *लीलावती* का नमूना–

"यदि इस बाजार में एक द्रम्म में 300 आम और एक पण में 30 बढ़िया अनार मिलते हैं, तो हे मित्र! शीघ्र बताओ कि 10 आमों के बदले में कितने अनार मिलेंगे।"

उत्तर 16, एक द्रम्म = 16 पण

लगता है कि उस समय अनार प्रचुर मात्रा में होते थे।

8. मनोरंजन के लिये "लीलावती" का निम्नलिखित उदाहरण देखिए और अपनी बुद्धि आजमाइए।

चार रत्नों के व्यापारी थे। उनमें से एक के पास 8 माणिक्य, दूसरे के पास 10 नीलम, तीसरे के पास 100 मोती और चौथे के पास 5 हीरे थे। स्नेहवश उन्होंने अपने-अपने धन में से एक-एक रत्न दूसरों को दे दिया जिससे उनके पास समान धन हो गया। हे मित्र! रत्नों का मूल्य अलग-अलग बताओ।

(भास्कराचार्य का उत्तर 24, 16, 1, 96)

9. गुणोत्तर श्रेणी सम्बन्धी प्रश्नों का एक नमूना—

"एक दाता ने किसी याचक को पहले दिन 2 कौड़ियाँ देकर दिन प्रति दिन द्विगुणित करके देने की प्रतिज्ञा की। तो बताओ उसने एक मास में कितना दान दिया।"

(उत्तर 30 दिन में 2, 14, 74, 83, 646 कौड़ियाँ)

उस समय प्रचलित मुद्रा इस प्रकार थी–

1 निष्क = 16 द्रम्म

1 द्रम्म = 16 पण

1 पण = 4 काकिणी

1 काकिणी = 20 वराटका या कौड़ी (cowry shells)

किसी संत ने गाया–

रात गँवायी सोय के, दिवस गँवायो खाय ।
हीरा जनम अमोल था, कौड़ी बदले जाय ।।

10 संचय और क्रम संचय का विषय प्राचीन काल से ही लोकप्रिय रहा है। हमेशा से इसमें रंग-बिरंगे फूलों की तरह विविध प्रकार के प्रश्नों पर विचार किया जाता रहा है। भास्कराचार्य ने भी ऐसा ही किया।

उनके निम्नलिखित उदाहरण में दशभुजाधारी शिवजी के दर्शन कीजिए (चित्र 1.3)

"श्री शंकरजी के दश हाथों में पाश, अंकुश, सर्प, डमरू, कपाल, त्रिशूल, खट्वांग, शक्ति (यहाँ तलवार), शर तथा धनुष को परस्पर बदलकर धारण करवाने से इनकी मूर्ति के कितने भेद होंगे।"

(उत्तर 10 ! = 3628, 800)



चित्र 1.3 दशभुजाधारी शिवजी

इस प्रकार हम देखते हैं कि भास्कराचार्य ने प्रारम्भिक गणित के विभिन्न विषयों के सैकड़ों उपयोगी सूत्रों और मनोरंजक उदाहरणों से युक्त *लीलावती* पुस्तक की रचना की जो अपने नाम के अनुसार एक अति सुंदर कृति है।

इस संबंध में कुछ बातों का उल्लेख करना जरूरी है। पहला कि *लीलावती* में अंकगणित तथा बीजगणित के अतिरिक्त ज्यामिति भी है। जिसके आधीन क्षेत्रव्यवहार, छायागणित आदि विषय आते हैं।

दूसरी बात यह है कि 12वीं सदी के पहले भी भारत में अनेक प्रसिद्ध गणितज्ञ हुए, जैसे आर्यभट प्रथम, ब्रह्मगुप्त, भास्कर प्रथम (ई. 7 वीं सदी) श्रीधर, महावीर इत्यादि, जिनकी बहुत-सी सामग्री *लीलावती* में अपनायी गई है।

तीसरी बात यह है कि हमारे भास्कराचार्य (अर्थात् भास्कर द्वितीय) ने *लीलावती* के अतिरिक्त *बीजगणित, सिद्धान्त शिरोमणि, करणकुतूहल* आदि ग्रन्थों की भी रचना की, लेकिन सबसे अधिक प्रसिद्ध *लीलावती* ही है।

भूतसंख्याएँ

ऊपर दिए उदाहरण (1) में "दिवाकर" यानी "सूर्य" का अर्थ "12" क्यों लिया गया, इस विचित्र बात को अब समझाते हैं। विषय रोचक तथा महत्त्वपूर्ण है इसलिये उसकी चर्चा थोड़ी विस्तृत होगी।

गणित तथा ज्योतिष विषयों पर लिखे गए संस्कृत ग्रन्थ मुख्यतः पद्य में हैं न कि गद्य में। इस प्रकार हमारे देश में नीरस समझे जाने वाले वैज्ञानिक साहित्य को भी काव्य का सरस रूप देने का प्रयत्न किया गया।

पद्य रचना में सुगमता हो और श्लोक व छन्द-पूर्ति में कोई कठिनाई न हो, इसके लिए छोटे-बड़े सभी प्रकार के पर्यायवाची शब्दों की आवश्यकता हुई। इसी "तुकबन्दी" की जरूरत को पूरा करने के लिऐ शब्दांक (word numerals) प्रणाली की प्रथा चल पड़ी क्योंकि आवश्यकता आविष्कार की जननी है। वैसे छुटपुट रूप से कुछ शब्द संख्या-संकेतों के रूप में पहले ही काम में आते रहे हैं।

इस शब्दांक-पद्धति का श्रीगणेश कब हुआ यह तो कहना कठिन है लेकिन ईसवी सन् की प्रारम्भिक शताब्दियों में, स्थान-मान क्रम से रखे हुए विशेष शब्दों द्वारा संख्याओं को सूचित करने की प्रणाली के प्रयोग के प्रमाण मिलते हैं।

ये विशेष शब्द स्वयं या शास्त्र के विधान के अंकबोधक होते हैं, जैसे "दन्त" जो 32 का बोधक है (क्योंकि हमारे 32 दाँत होते हैं) तथा "वेद" जो 4 का बोधक है (क्योंकि वेद चार हैं, जिनके नाम ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद तथा सामवेद हैं)। इन अंकबोधक शब्दों को (या उनके समूहों को) भूतसंख्या कहते हैं। डरिये नहीं, इनमें कोई भूतप्रेत निवास नहीं करता।

स्पष्ट है कि भूतसंख्याओं का चुनाव शब्दों की अंकबोधकता पर निर्भर करता है। संख्या एक अथवा अंक 1 किसी ऐसी वस्तु, प्राणी या भाव के द्वारा सूचित किया जा सकता है जो अपने प्रकार की एक ही हो, जैसे पृथ्वी, चन्द्रमा, विष्णु आदि। संख्या दो या अंक 2 को ऐसी वस्तु से सूचित करेंगे जो जोड़े में होती हो, जैसे हाथ, कर्ण, आँख इत्यादि (लेकिन "शंकरनयन" का मतलब होगा 3 क्योंकि शिवजी के तीन नेत्र माने जाते हैं)।

भूतसंख्याओं की अंकबोधना को समझने के लिये हमें भारतीय संस्कृति, धर्म तथा संस्कृत साहित्य की अच्छी जानकारी होनी चाहिए। "राम" के लिए 3 का प्रयोग किया जाता है क्योंकि परशुराम, सीतापति राम, और बलराम ये तीन प्रसिद्ध राम हुए। इसी प्रकार "बाण" 5 के लिए (क्योंकि कामदेव के पाँच प्रसिद्ध बाण थे) "हाथी" 8 के लिए (क्योंकि दिग्गज आठ माने गये हैं) तथा "सूर्य" 12 के लिये प्रयोग किये जाते हैं (परम्परा में 12 मासों के लिए सूर्य के 12 भेद माने गये हैं)। इन शब्दांकों की एक संक्षिप्त सूची आगे दी गई है।

यदि कोई शब्द किसी अंक का बोध कराता है तो उस शब्द के सभी पर्यायवाची शब्द उसी अंक का बोध करायेंगे। काव्य की अथवा अन्य जरूरत के अनुसार उचित शब्दांक ग्रहण कर लिया जाता है, जैसे 12 के रवि, सूर्य, इन, भानु, दिवाकर, दिवसपति इत्यादि में से किसी का भी चयन कर सकते हैं।

जैसे अंकों के लिखने में इकाई, दहाई, सैकड़ा आदि के स्थान दाई से बाई ओर गिने जाते हैं, ठीक उसी प्रकार का क्रम शब्दांकों के लिए प्रयोग में होता है। इसको

"अङ्कानां वामतो गतिः अर्थात् अंकों की गणना उल्टी दिशा से" नियम द्वारा याद रखते हैं।

उदाहरण के लिए भूतसंख्या खबाणसूर्याः का अर्थ 1250 होगा। देखिये कैसे—खबाणसूर्याः= ख(0), बाण (5), सूर्य (12) अब दाईं से बाईं ओर लिखने पर 12,5,0 अर्थात् 1250 हुआ।

संस्कृत में गुणा करने के लिये हनन्, वध आदि धातुओं (जिनका अर्थ होता है "मारना") का प्रयोग किया जाता है। अतः "बाण से मारो" का गणितीय अर्थ "5 से गुणा करो" होता है, कोई हिंसा करना नहीं।

इसी प्रकार "आहतः" (मारा गया) का प्रयोग करके "रामाहतो गजः" = 8x3

तथा "गजाहतो रामः" = 3x8

अतः गणित के साहचर्य (Commutative) नियम से ऊपर के दो वाक्यों में कोई गणितीय अंतर नहीं है। लेकिन उनके सामान्य अर्थ "राम के द्वारा मारा गया हाथी" और "हाथी के द्वारा मारा गया राम" इन दोनों में ज़मीन और आसमान का अंतर है।

इस रोचक प्रणाली का उपयोग विद्वानों ने बड़ी-बड़ी संख्याओं के लिखने तथा बौद्धिक चमत्कार के प्रदर्शन में किया है। समय सूचित करने के लिऐ तो इस पद्धति का प्रयोग ग्रन्थों, दान पत्रों, अन्तर्लेखों और हस्तलिपियों में प्रचुरता से हुआ है। जैसे भास्कराचार्य ने *सिद्धान्त शिरोमणि* में अपने जन्मकाल के बारे में यह पंक्ति लिखी है-

रसगुणपूर्णमही समशकनृप समयेऽभवन्ममोत्पत्तिः

अर्थात्

"रस (6), गुण (3), पूर्ण (0), मही (1)

यानी 1036 शक-संवत् में मेरा जन्म हुआ"। अतः उनका जन्म काल ई. सन् 1114 था।

भूतसंख्या सूची

अंक	शब्द
0.	शून्य, ख, गगन, अभ्र, जलधारा पथ,

पूर्ण, अम्बर, आकाश, व्योम, इत्यादि।

1. चन्द्र, इन्दु, शशि, शशांक, अब्ज, हिमकर, रजनीकर, भू, भूमि, मही, पृथ्वी, कलाधर, रूप, विष्णु, पितामह, इत्यादि।

2. यम, यमल, अश्विन् , लोचन, नेत्र, नयन, पक्ष, बाहु, कर, कर्ण जानु, अयन, युग्म, इत्यादि।

3. राम, गुण, लोक, काल, अग्नि, हरनेत्र, अनल, पावक, पुर, पुष्कर, भुवन, वैश्वानर, इत्यादि।

4. वेद, श्रुति, समुद्र, सागर, अब्धि, जलधि, वारिधि, कृत, वर्ण, आश्रम, युग, तुर्य, विषनिधि, सलिलाकर, इत्यादि।

5. बाण, शर, शायक, इषु, भूत, पाण्डव, अर्थ, इन्द्रिय, विषय प्राण, भाव इत्यादि।

6. रस, अंग, ऋतु, तर्क, दर्शन, राग, मासार्ध, कुमारवदन, कारक अरि, इत्यादि।

7. पर्वत, अग, अचल, शैल, नग, गिरि, ऋषि, मुनि, वार, धातु, स्वर, अश्व, द्वीप, इत्यादि।

8. वसु, मंगल, अहि, नाग, गज, मातंग, द्विरद, सर्प, कुंजर, सिद्धि, इभ, तक्ष, सिन्धुर, इत्यादि।

9. अंक, नन्द, निधि, द्वार, गो, छिद्र, ग्रह, दुर्गा, इत्यादि।

10. दिशा, अवतार, रावणशिर,

11. रुद्र, ईश्वर, हर, महादेव, भव, ईश इत्यादि।

12. रवि, सूर्य, अर्क, इन, मास, आदित्य, दिवाकर, राशि, इत्यादि।

13. विश्व, अघोष, विश्वेदेवा, अतिजगती, इत्यादि।

14. इन्द्र, मनु, विद्या, शक्र, इत्यादि।

15. तिथि, दिन, अहन् , इत्यादि।

16. नृप, भूप, कला, अष्टि इत्यादि।

17. अत्यष्टि।

18. धृति।
19. अतिधृति।
20. नख, कृति।
21. इध्म, अतिकृति।
24. जिन, गायत्री, इत्यादि।
25. तत्त्व।
27. भ, नक्षत्र, इत्यादि
32. दन्त, रद।
33. सुर, देव, अमर, इत्यादि।

अध्याय 2

शतरंज के आविष्कार का विचित्र इनाम

संसार प्रसिद्ध शतरंज के खेल को सभी ने देखा होगा। बालकों से लेकर बूढ़ों तक, अनपढ़ से लेकर विद्वानों तक, प्रायः सभी वर्गों के लोगों में यह लोकप्रिय है। इसमें एक वर्गाकार पट्ट होता है जिसमें काले-सफेद 64 खाने, फर्श के एक सुन्दर डिजाइन की तरह बने होते हैं। इन खानों पर मोहरों की चालें चली जाती हैं।

खेल तो लोकप्रिय है, लेकिन उसके आविष्कार करने वाले के बारे में लोग कम ही जानते हैं। आओ सुनें, आज उसी से सम्बन्धित एक मजेदार कहानी।

शतरंज के खेल के आविष्कारक का नाम शेष था। विभिन्न प्राचीन ग्रन्थों में, जिनसे हमें आविष्कार की जानकारी मिलती है, उसके नाम के सिस्सा, सहसी आदि रूप भी दिए गए हैं। खेल को ईजाद करके शेष बड़ा आनंदित हुआ और खुशी के मारे फूला नहीं समाया।

थोड़े दिन बाद जब शेष ने शतरंज के खेल का प्रदर्शन सिंध नरेश भलीत राय के दरबार में किया तो उसकी बहुत प्रशंसा की गई। राजा तो इतना प्रसन्न हुआ कि उसने शेष को मुँहमांगा इनाम देने की घोषणा की।

"तुम जो कुछ मांगो, मैं तुम्हें दूंगा" राजा ने शेष से कहा।



चित्र 2.1 राजा के दरबार में पंडित शेष अपने शतरंज खेल के साथ

शेष ने शायद पहले से ही इस बारे में कुछ सोच रखा था। इसलिये उसने राजा को तुरंत धन्यवाद दिया और बोला–

"हे राजन, यह आपकी महान् उदारता है कि आप मुझे मनमाना इनाम देने की घोषणा कर रहे हैं।"

और फिर बड़े सरल स्वभाव में निवेदन किया-- "दाता ! मुझे केवल इस शतरंज पट्ट के 64 खानों पर रखने के लिये कुछ गेहूँ के दाने चाहिये, ताकि पहले खाने पर एक दाना, दूसरे पर दो दाने, तीसरे पर चार दाने, चौथे पर आठ दाने और इसी प्रकार हर बार दुगना करते हुए सभी खानों को पूरा कर सकूं।

"राजन ! आप प्रसन्न हों तो उतने गेहूँ के दाने मुझे दिये जाने की आज्ञा दें।"

जब राजा ने यह सुना तो उस मांग को बहुत तुच्छ समझा। उसने अपने को दानवीरता से गौरवान्वित समझते हुए सभा में उदारताभरी घोषणा की–

"मैं तो शतरंज के आविष्कारक को खुशी से बहुत बड़ी चीज भी देने की इच्छा रखता हूँ, लेकिन उसने तो बहुत ई तुच्छ मांग की है।" इस पर शेष राजा के सामने याचक की तरह दोनों हाथों को फैलाता हुआ विनम्रतापूर्वक बोला–

"राजन, आपकी कृपा हो । बस मुझे तो केवल उतना ही गेहूँ पाने की इच्छा है तथा उससे मुझे पूर्ण संतोष हो जाएगा । मैं और ज्यादा कुछ नहीं चाहता ।"

वही मांग दोहराने पर राजा को आश्चर्य हुआ, क्योंकि बुद्धिमत्तापूर्ण शतरंज के आविष्कार के कारण, शेष के बुद्धिमान होने में कोई संदेह नहीं था । फिर भी उसने समझा कि शेष की बुद्धि शायद इस समय काम नहीं कर रही, जिससे वह इस सुनहरे अवसर का लाभ उठा नहीं पा रहा है । अतः उसने आज्ञा दी कि शेष की इच्छापूर्ति के लिए भण्डार से पर्याप्त गेहूँ दे दिया जाय ।

वास्तव में शेष की इच्छानुसार 64 खानों में रखने के लिये गेहूँ के अनाज की कितनी बड़ी मात्रा चाहिये, इसका अनुमान लगाना साधारण व्यक्ति की कल्पना के बाहर तो है ही, राजा को भी उसका कोई अन्दाज नहीं हुआ । सभा में उपस्थित कोई भी व्यक्ति उस अत्यंत विशाल राशि के बारे में नहीं सोच सका । मालूम पड़ता है कि उस सभा में उस समय कोई भी कुशल गणितज्ञ नहीं था ।

बाद में राजकीय भंडार और खजाने के पदाधिकारियों ने शेष को दी जाने वाली गेहूं की मात्रा का हिसाब लगाया, तो पाया कि उसके लिये तो इतना गेहूँ चाहिये जितना उस राज्य में तो क्या सारी दुनिया में भी उपलब्ध नहीं हो सकता । अतः न तो शेष की मांग पूरी हो सकती है, और न राजा के आदेश का पालन करना संभव है । इन पृष्ठों के पढ़ने वाले अधिकतर पाठकों को भी अवश्य आश्चर्य हो रहा होगा कि क्या ऐसी भी स्थिति वास्तव में थी ।

जब राजा को यह बात मालूम हुई तो उसे विश्वास नहीं हुआ और अपनी आज्ञा का पालन न होने पर विस्मय हुआ । उसने आदेश दिया कि सभी सम्बन्धित अधिकारी उस के समक्ष उपस्थित हों और इस बात का स्पष्टीकरण दें कि एक छोटी-सी बात के लिए उसकी आज्ञा का पालन क्यों नहीं हुआ ।

सभी पदाधिकारी दरबार में उपस्थित हुए । उनका चेहरा उदास था और वे सिर झुकाकर खड़े थे । उनका मन डर के मारे धुक-धुक कर रहा था । क्योंकि राजा की आज्ञा का पालन न करने का नतीजा वे सब भली-भांति जानते थे ।

लेकिन उस दुविधापूर्ण स्थिति का सामना किसी दिन होना ही था । सो वह समय आ

पहुँचा । पदाधिकारियों से पूछा गया कि शतरंज के आविष्कारक की इच्छा पूर्ति के लिए गेहूँ देने की बात को उन्होंने इतना कठिन कार्य क्यों समझ रखा है ।

आज्ञापालन न होने से राजा का संतुलन वैसे ही बिगड़ा हुआ था । उसकी नासमझी या नासमझी में की गई भूल के बारे में सीधे उसे बताने की कौन हिम्मत करता । लेकिन अधिकारियों को कोई अन्य चारा न था । वे यह भी जानते थे कि विडम्ब स्थिति के लिये उनका कोई दोष न था । अतः उन्होंने राजा को विनम्रता से दबी हुई आवाज में बता दिया कि यदि सारे विश्व में उत्पादित गेहूँ को इकट्ठा किया जाये तो भी उस मात्रा से राजा की आज्ञा का पालन नहीं हो सकता ।

राजा को यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ । उसे लगा कि अधिकारी सच नहीं बोल रहे हैं । लेकिन मामला उसे भी कुछ-कुछ गम्भीर प्रतीत हुआ । इसलिये आज्ञाभंग होने की बात फिलहाल भुलाकर, उसने आदेश दिया कि गेहूँ की मात्रा संबंधी बात को पूर्णतया स्पष्ट रूप से सिद्ध किया जाये ।

राजा का नया आदेश सुनकर अधिकारियों ने राहत की सांस ली क्योंकि उससे उनके सिर की एक बड़ी बला टल गई ।

राजा स्वयं गणितज्ञ न था, लेकिन गणित में उसकी आस्था थी । आखिर तर्क पर आधारित गणित द्वारा निकाली बातें सर्वमान्य होती हैं, चाहे वे अन्तर्प्रज्ञा और सामान्य कल्पना के परे हों । इसलिये अंतिम निर्णय गणितज्ञों द्वारा राशि सिद्ध करने पर छोड़ दिया गया।

फिर क्या था । एक विशेष सत्र हुआ जिसमें कुछ कुशल गणितज्ञ भी आमंत्रित किये गये । गणना करने के बाद उन्होंने घोषणा की कि शेष की इच्छित मांग को पूरा करना किसी के भी सामर्थ्य की बात नहीं है ।

पूर्ण विश्वास के साथ कहे इस नतीजे पर पहुंचने का गणितीय रास्ता इस प्रकार था। यदि पहले खाने पर 1 दाना, दूसरे पर 2 दाने, तीसरे पर 4, चौथे पर 8 इत्यादि अर्थात् हर बार दुगना करके अगले खाने पर रखें तो 16वें खाने के लिये 2^{15} अर्थात्

$2 \times 2 \times 2 \times$ ....(पन्द्रह बार) $= 32768$

दानों की आवश्यकता होगी ।

जब तोल कर वजन निकाला गया तो 32768 दानों का भार 5 सेर निकला । मालूम

पड़ता है कि उस समय के गेहूं के दाने काफी मस्त और वजनदार होते थे । जिन्होंने, टॉल्सटाय (Tolstoi) लिखित "आम बराबर गेहूं" कहानी पढ़ी है, उनको प्राचीन काल में बड़े-बड़े दानों के होने की बात पर कोई आश्चर्य नहीं होगा ।

खैर कुछ भी हो, अधिकारियों ने इस बात का पता लगा लिया कि 16वें खाने के लिये 5 सेर गेहूँ चाहिए । 17वें खाने के लिये 10 सेर, 18वें खाने के लिये 20 सेर तथा 19वें खाने के लिये 40 सेर अर्थात् एक मन गेहूँ चाहिए । 20वें खाने के लिये 2 मन गेहूं की आवश्यकता होगी ।

इस प्रकार द्विगुणोत्तर गणना करते जायें तो हम पायेंगे कि 40वें खाने पर पहुँचने पर 2 x 2 x 2 x---------(21 बार) = 20,97,152 मन अर्थात् सिर्फ 40 वें खाने के लिये 20 लाख 97 हजार व 152 मन गेहूँ की आवश्यकता होगी । एक बोरे में लगभग ढाई मन गेहूँ आता है । इसलिये 40वें खाने के लिये ही आठ लाख बोरे से अधिक गेहूँ चाहिये । और अभी दिल्ली दूर है, क्योंकि 64वें खाने तक जाना है ।

अधिकारियों ने प्राप्त आंकड़ों के आधार पर एक और बात का पता लगा लिया कि उस समय के एक उपजाऊ जिले में भी 20 लाख मन गेहूं पैदा नहीं होता था । खैर, यदि यह मान लिया जाए कि एक जिले की सम्पूर्ण पैदावार से इतना गेहूं मिल जाएगा कि 40 वें खाने की जरूरत (शेष की इच्छानुसार) पूरी हो, तो 41वें खाने के लिये 2 जिलों की उपज की आवश्यकता होगी ।

इस प्रकार आगे की गणना के लिये हर बार दुगुना करते जाएँ तो 50वें खाने के लिये 2x2x2x2........ (दस बार) = 1024 जिलों की उपज की आवश्यकता होगी ।

60 वें खाने पर पहुंचते-पहुंचते जिलों की संख्या, सुरसा (राक्षसिनी, जिसने हनुमान जी को परेशान किया था) की तरह बढ़ती हुई 10,48,576 हो जाएगी । अर्थात् दस लाख से भी ज्यादा जिलों को लांघ गये हैं, फिर भी अभी दिल्ली दूर ही है ।

अन्तिम, 64 वें खाने के लिये जो गेहूँ की मात्रा चाहिये, उसके बराबर उपज पाने के लिये,

1048,576 x 16 अर्थात् 167,77,216 जिलों की आवश्यकता होगी ।

यदि सारे 64 खानों की आवश्यकताएँ जोड़ें, तो हमें सम्पूर्ण जरूरत मालूम होगी जिसके लिये 3,3554,431 जिले चाहिये!

अर्थात् शेष की मांग पूरी करने के लिये 3 करोड़, 35 लाख, 54 हजार, 431 उपजाऊ जिलों की उपज की आवश्यकता होगी। इनाम के लिये करोड़ों गेहूं के दाने नहीं करोड़ों बोरे भर गेहूँ भी नहीं, करोड़ों जिले चाहिये।" और फिर प्रत्येक जिले में 20 लाख मन गेहूँ पैदा होना चाहिये, यह भी याद रखें।

"न नौ मन तेल होगा, न राधा नाचेगी" कहावत यहाँ नगण्य मालूम होती है।

हमारी गोलाकार पृथ्वी का भूमध्यरेखीय व्यास 7927 और ध्रुवीय व्यास 7890 मील के लगभग है। गणितीय सूत्र,

क्षेत्रफल $= 4\pi r^2$

लगाकर गोले की बाहरी वक्र सतह का क्षेत्रफल लगभग 195,950,000 वर्गमील, अर्थात् 20 करोड़ वर्ग मील के लगभग है। इसमें भी अधिकतर भाग मीलों गहरे महासागरों से ढका है। बाकी में भी अनेक विशालकाय पहाड़, नदियाँ, रेगिस्तान और ऊबड़-खाबड़ पहाड़ियाँ व अनुपजाऊ भूमि है, जहाँ गेहूँ की खेती नहीं हो सकती। शहरी और आवासीय जमीन की तो बात ही कौन करे। फिर भी यदि हम पृथ्वी की सारी सतह को खेती योग्य मान लें और उसे 100 वर्ग मील क्षेत्रफल वाले छोटे-छोटे जिलों में विभाजित करने की कल्पना करें, तो केवल 20 लाख जिले ही मिल सकेंगे 20 करोड़ नहीं।

इस तरह एकांगी (शेष के पक्ष में) अव्यावहारिक गणना करने पर भी हमें सारी पृथ्वी में उतने जिले नहीं मिल सकते जितने इनामी गेहूँ की आवश्यक उपज के लिये जरूरी हैं। अतः राजा भलीत राय ही नहीं, जिसका राज्य केवल एक छोटे से भूखण्ड तक सीमित था, सारी पृथ्वी पर राज्य करने वाले किसी चक्रवर्ती सार्वभौम सम्राट के लिये भी शेष की मांग पूरी करना संभव नहीं था। फलस्वरूप, शतरंज के आविष्कारक का इच्छित इनाम–गेहूँ के कुछ दाने, किसी भी हालत में चुकाया नहीं जा सकता था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि शेष ने शतरंज के खेल का आविष्कार कर दुनिया को एक करिश्मा तो दिखाया ही साथ में अपनी गेहूँ के "कुछ दानों" के इनाम की मांग करके

एक और करिश्मा प्रदर्शित किया। बिना खेल खेले ही उसने एक छोटी सी चाल से राजा को मात दे दी।

अपना वचन न निभा पाने पर राजा को कैसा लगा होगा, और उसने क्या किया यह कुछ ज्ञात नहीं। लेकिन स्थिति ऐसी थी कि सबके लिये चुप रहने के अलावा कोई अन्य चारा नहीं था। भले ही सान्त्वना के लिये कोई अन्य इनाम दिया गया हो, परन्तु इसके बारे में इतिहास और कहानीकार दोनों ही मौन हैं। फिर भी जो कुछ हुआ, उससे जो हलचल मची, वह कम न थी।

गेहूँ की विशाल मात्रा की ऊपर लिखी गणना प्रसिद्ध प्राचीन पुस्तक, *नफयिस-उल-फूनून* (विज्ञान की बहुमूल्य वस्तुएँ) में दी गई है जिसके बारे में एक लेख ऐशियाटिक सोसाइटी की पत्रिका में इस शताब्दी के प्रारंभ में छपा था।

महाशंख से ज्यादा गेहूँ के दाने

थोड़ा सा भी गणित समझने वाले स्वयं गेहूँ के दानों की गणना निम्नलिखित रीति से लगा सकते हैं।

यदि आवश्यक दानों की कुल संख्या को S से निरूपित करें तो

$S = 1+2+4+8+16+$ -------- (64 पदों तक) (A)

अर्थात्

$S=1+2+2^2+2^3+2^4+ \text{------} 2^{62} + 2^{63}$ (B)

अतः

$2S = 2+2^2+2^3+2^4+2^5 + \text{--------} + \text{-----} 2^{63}+2^{64}$ (C)

अब (B) को (C) में से घटाने पर

$2S - S = 2^{64}-1$ (D)

इसे गुणोत्तर श्रेणी (G.P.) के योगफल के सूत्र को सीधे (A) में लगाकर भी निकाला जा सकता है।

अब 2^{64} के लिये 2 को 64 बार लिखकर आपस में गुणा करने की जगह उसका मान

निकालने की एक सरल विधि इस प्रकार है–

$2^2 = 4$

वर्ग करने पर $(2^2)^2 = 4 \times 4$

अर्थात् $2^4 = 16$

इसी प्रकार बार-बार वर्ग करने पर

$(2^4)^2 = 2^8 = 16 \times 16 = 256$

$(2^8)^2 = 2^{16} = 256 \times 256 = 65536$

$(2^{16})^2 = 2^{32} = (65536)^2 = 4294967296$

और अंत में $2^{64} = (4294967296)^2$

यानी $2^{64} = 1,84,46,74,40,73,70,95,51,616$

यह ध्यान देने योग्य बात है कि 2^{64} देखने में कितनी छोटी संख्या लगती है, लेकिन उसका पूरा दशमिक रूप या मान कितना विशाल है।

घात संकेतन (power notation) में यही शक्ति (Power) है कि " देखत में छोटी लगे, घाव करे गंभीर"।

एक बड़ी मजेदार बात यहाँ यह है कि 2^{64} के दशमिक मान में 20 अंक हैं, लेकिन उनमें आधार अंक 2 लापता है।

समीकरण (D) से हम इस निर्णय पर पहुंचे कि शतरंज के आविष्कार करने वाले की इच्छापूर्ति के लिये गेहूं के दानों की संख्या होगी–

S=1,84,46,74,40,73,70,95,51,615

वास्तव में यह एक अत्यंत विशाल संख्या है। क्या तुम इसे बांच सकते हो या शब्दों में लिख सकते हो ? या बचपन में रटी हुई दशोत्तर गणना संज्ञाएँ भूल गये। तरोताजा करने के लिये इकाई, दहाई, सैकड़ा, हजार इत्यादि स्थान-नामों को दोहरा लीजिये। ऊपर लिखी संख्या को इस प्रकार पढ़ा या बोला जा सकता है–

1 महाशंख, 84 शंख, 46 पदम, 74 नील, 40 खरब, 73 अरब, 70 करोड़, 95 लाख, 51 हजार, 6 सौ पन्द्रह।

आधुनिक समय बड़ी-बड़ी संख्याओं का युग है अरबों-खरबों रुपयों या डालरों की योजना

या सरकारी बजट अब आम बात हो गई है । आज की मंहगाई में "लखपति" शब्द कोई खास मायने नहीं रखता ।

हम ऊपर प्रदर्शित कर चुके हैं कि इतनी बड़ी संख्या S के बराबर गेहूँ के दाने पाना राजा के लिये असम्भव था । गेहूँ की उस अपार राशि की अनुपलब्धता को अन्य रीतियों से भी सिद्ध किया गया है ।

यह तो स्पष्ट है कि कुल वजन गेहूँ के दानों की किस्म (छोटे-बड़े, हलके-भारी) पर निर्भर करता है । सामान्यतया 100 ग्राम में 500 से 2500 तक दाने चढ़ सकते हैं । यदि एक मन में 6 लाख दाने चढ़े तो 3 नील मन से भी ज्यादा अनाज की आवश्यकता होगी । संसार भर की प्रतिवर्ष उपज 3 खरब मन मानकर यदि हिसाब लगाया जाये तो शतरंज के आविष्कारक को सारे विश्व की सौ वर्ष से भी ज्यादा समय की पैदावार समर्पित करनी होगी । अब आप ही बताइये, यह कैसे संभव है ।

एक अन्य तरीका देखिये । बहुत ही हल्के और छोटे दाने लिये जायें तो एक किलो में 30 हजार दाने चढ़ सकते हैं । एक बोरे में लगभग 30 लाख रखे जा सकेंगे । एक घनमीटर में ठूस-ठूस कर भरने पर यदि 5 बोरे दाने भी समा जायें तो उनकी संख्या डेढ़ करोड़ होगी । इस प्रकार संपूर्ण दानों की संख्या 1200 घन किलोमीटर से बड़े गोदाम में ही रह सकती है । यदि 4 मीटर ऊंचा और 10 मीटर चौड़ा गोदाम लिया जाये तो उसकी लम्बाई 3 करोड़ किलोमीटर से भी अधिक रखनी होगी । हमारी पृथ्वी का घेरा तो किसी भी दिशा में 40 हजार किलोमीटर से ज्यादा नहीं है । पूरी परिधि में 750 मंजिलों का गोदाम बनाना होगा । इसके लिए धन, श्रम, समय और सामग्री कहाँ से आयेगी । व्यावहारिक दृष्टि से यह सब असंभव है । अतः राजा को अपना वचन निभाने का कोई उपाय न था ।

पता नहीं, यदि राजा की समस्या किसी ऐसे व्यक्ति के सामने रखी जाती जो किसी भी कार्य या चीज को असम्भव नहीं मानता (जैसे नेपोलियन), तो वह क्या समाधान बताता? देवी-देवताओं के वरदान की बात करना तो ठीक नहीं क्योंकि उससे तो चुटकियों में बड़े से बड़े अचम्भे हो सकते हैं । हालांकि उन पर विश्वास करना कठिन है । गणितीय दूरदर्शिता के अभाव में राजा वचन देने के पहले सतर्क न हो सका जिससे उसे एक विचित्र पराजय

का मुंह देखना पड़ा । हाँ, उसको अपनी अंतिम हार से बचने या वचन न निभा पाने की विकट स्थिति से निपटने का एक सरल उपाय था यदि वह सूझ-बूझ से काम लेता । शेष से कहा जा सकता था कि वह राजकीय भंडार से स्वयं गिनकर क्रमशः प्रत्येक खाने के लिये आवश्यक दाने ले ले ।

यदि आविष्कारक एक सेकेण्ड में पांच दाने गिनता, तो एक दिन रात के 24 घंटे में 432000 दाने ही गिन पाता । इनका वजन यदि एक मन मान लिया जाये, तो राजा को एक साल में मुश्किल से 150 बोरे गेहूँ देना पड़ता । इसका इन्तजाम करना राजा के लिये एक आसान बात थी ।

उधर यदि आविष्कारक सारी जिन्दगी दाने गिनने में लगाता तो भी गेहूँ की सैद्धांतिक रूप से निकाली गई मात्रा का एक छोटा-सा भाग ही पा पाता । इस प्रकार आविष्कारक या तो परेशान होकर सम्पूर्ण इनाम पाने का इरादा ही छोड़ देता या फिर उसकी जीवन-लीला बीच में, दाने गिनते-गिनते, समाप्त हो जाती । 64वें खाने के पहुंचने के बहुत पहले खेल खत्म हो जाता और राजा की हार का कोई प्रश्न ही नहीं उठता ।

परवर्ती काल में लोगों में शतरंज के प्रति दिलचस्पी थी ही, उसके आविष्कारक की कहानी सुनकर उन्हें बड़ा आनन्द मिलता । पाठकों के मनोरंजन के लिये और साथ ही इतनी बड़ी संख्या (S) को छोटे से रूप (D) में लिखने के मध्य युग के लेखकों ने उक्त कहानी का आसरा लिया । इस प्रकार संख्या S तथा उस तक पहुंचने की विधियों को अनेक ग्रन्थों में स्थान मिला, चाहे वे किसी भी देश, समय या भाषा में लिखे गये हों । उदाहरण के लिये हाजी अब्दुल हमीद गज़नवी (ई० 14वीं सदी) ने ***दस्तूर-ए-अलबाब फी इल्म अलहिसाब*** में S को निकालने की विधि दी है । उन्होंने फारसी भाषा में यह पुस्तक अपने पुत्र को सम्बोधित करके लिखी थी ।

दक्षिण भारत की मध्ययुगीय कन्नड़ भाषा में लिखी पोथी ***चतुरंग लेखन तण्डुल स्थापनाक्रम*** में भी S को निकालने की विधि दी है । इस पुस्तक को एक जैन विद्वान ने लिखा और इसमें, दक्षिण भारतीय पुट देते हुए, गेहूँ के स्थान पर चावल के दानों की बात कही गई है।

लेकिन सबसे महत्त्वपूर्ण बात इस पुस्तक में यह है कि शतरंज की कहानी को एक अनूठा रूप दे दिया गया है। राजा समझदार था, उसने दानों की राशि का हिसाब पहले ही समझ लिया। आश्चर्य की बात तो यह है कि विशाल मात्रा को जानते हुए भी उसने इनाम देने का वचन दे दिया। मालूम पड़ता है कि उसके खजाने में अपार धन था। साथ में चावल की प्रचुर मात्रा की उपलब्धता की कल्पना कर ली गई है। फिर क्या था उसने सारी दुनिया से चावल इकट्ठा करना शुरू कर दिया। करोड़ों मन चावल प्रति दिन संसार के कोने-कोने से राजधानी में लाया जाने लगा। इस प्रकार वह पूरे 100 वर्षों तक इनाम का चावल देता गया, ऐसा कहानीकार लिखता है सारी मात्रा अभी नहीं चुक पाई थी।

अतः उसके बाद, उसके पुत्र ने भी यह सिलसिला जारी रखा। सत्तर साल से भी ज्यादा समय लगा, लेकिन उसने सारे इनाम की चावल-राशि आखिर में अदा कर दी।

एक असम्भव बात कैसे संभव हुई इस पर पाठक स्वयं विचार करें।

अध्याय 3

बड़ी-बड़ी संख्याओं का देश भारत

जिस प्रकार मनुष्य ने अपने शरीर के कुछ अंगों, जैसे हस्त (hand), पाद (foot), अंगुल (finger) इत्यादि का उपयोग लम्बाई नापने में किया, उसी प्रकार गणना या गिनती करने के लिये भी हाथों की उंगलियों का प्रचुरता से प्रयोग किया। यह बहुत व्यावहारिक भी था। शायद यही कारण है कि विश्व की अधिकतर प्राचीन सभ्यताओं और जनजातियों में गणना का आधार (base) दश (Ten) था। भगवान ने हमें दश उंगलियाँ देकर दश के आधार को प्रचलित और सर्वमान्य बनाने में मदद की, हालांकि वह सर्वोत्तम आधार नहीं है। बारह का आधार बेहतर है, क्योंकि 12 का आधा, तिहाई और चौथाई हिस्सा आसानी से पूर्णांकों में हो जाता है जिससे दैनिक व्यावहारिक कार्यों में बड़ी सुविधा होती है। इसके कुछ पुराने उदाहरण हैं, एक फुट में 12 इंच, एक शिलिंग में 12 पेन्स, तथा अंग्रेजी शासन के समय भारत में चलने वाले एक आने में 12 पाई। कुछ भी हो, ऐसा प्रतीत होता है कि भगवान विष्णु को भी दश की संख्या ही प्रिय थी, इसलिये उन्होंने दश अवतार लेने की बात सोची थी (दशवाँ कल्कि अवतार होना अभी बाकी है)। वैसे, वस्तुओं के क्रय-विक्रय में "दर्जन" (dozen) भी बहुत लोकप्रिय है।

दश को आधार मानकर गणना करने का रिवाज़ भारत में प्राचीन काल से चला आ

रहा है । लेकिन विशेष बात यह है कि बहुत बड़ी गणना संख्याओं को व्यक्त करने के वास्ते यहाँ वैदिक काल से ही शब्दावली उपलब्ध है । ऐसा हमारे विकसित धर्म, संस्कृति और दर्शन की आवश्यकताओं के कारण हुआ था । दूसरे देशों और सभ्यताओं में गणना की शब्दावली सीमित थी । इसलिये अलबेरूनी (लगभग ई. सन् 1030) लिखता है–

"मैंने बहुत-सी भाषाओं में संख्याओं के विभिन्न क्रमों के नामों का अध्ययन किया है, और पाया कि वे हजारों से आगे नहीं जाते हैं ...... मैंने इस विषय पर एक अलग से पुस्तक लिखी है । लेकिन भारतीय संख्या प्रणाली में बहुत आगे तक गणना - शब्द मिलते हैं।

रोमन के पास 1000 (मिले mille) और यूनानियों के पास 10000 (मिरियड myriad) से बड़ी संख्याओं को व्यक्त करने वाले कोई उपयुक्त (अयौगिक) शब्द नहीं थे । अंग्रेजी शब्द "मिलियन" (million) जो 10^6 (या दश लाख) निरूपित करता है और उससे बने "बिलियन" (Billion) "ट्रिलियन" इत्यादि शब्द बहुत बाद (ई. 13वीं शताब्दी) में प्रचलित हुए ।

वैदिक वाङ्मय भारत का प्राचीनतम साहित्य है, जिसमें चार वेद (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद), उनकी बहुत-सी संहिताएं, छः वेदांग (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्दःशास्त्र, तथा ज्योतिष), अनेक ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् आदि सम्मिलित हैं । इनमें ऋग्वेद सबसे प्राचीन है । उसमें 1000 के लिये "सहस्र"(हजार) तथा 10000 के लिये "अयुत" (दश हजार) का प्रयोग अनेक बार हुआ है ।

दशोत्तर (यानी दशगुणोत्तर) गणना के लिये तेरह नामों की एक निश्चित सूची यजुर्वेद की *वाजसनेयी संहिता* (जिसे *शुक्ल यजुर्वेद* भी कहते हैं) के 17वें अध्याय में इस प्रकार दी गई है–

एक, दश, शत, सहस्र, अयुत, नियुत, प्रयुत ($=10^6$), अर्बुद, न्यर्बुद, समुद्र, मध्य, अन्त, और परार्ध ($=10^{12}$)

संबंधित वैदिक ऋषि के नाम पर इसे मेघातिथि की सूची कहते हैं । हूबहू यही (या थोड़ी-सी भिन्नता के साथ) सूची *तैत्रिरीय संहिता* (जिसे कृष्ण यजुर्वेद भी कहते हैं), *शतपथ ब्राह्मण, काठक संहिता, मैत्रायणी संहिता, पञ्चविंश ब्राह्मण* (जिसे *ताण्ड्य ब्राह्मण* भी कहते

हैं) *जैमिनी उपनिषद् ब्राह्मण,* तथा *शांख्यायान श्रोत* सूत्र में भी पाई जाती है । इससे मेधा तिथि सूची की लोकप्रियता सिद्ध हो जाती है ।

टीकाकार भट्‌भास्कर और कुछ विद्वानों की राय में *तैत्रिरीय संहिता* VII, 2.20 में जो सूची आई है उसमें ऊपर दिये गये 15 नामों के आगे सात और संख्या संज्ञाएँ हैं । वे इस प्रकार हैं–

उषस् $= 10^{13}$
व्युष्टि $= 10^{14}$
उदेश्यत् (या देश्यत्) $= 10^{15}$
उद्यत् $= 10^{16}$
उदित $= 10^{17}$
सुवर्ग $= 10^{18}$
और लोक $= 10^{19}$

भारतवर्ष एक बड़ा देश है । प्राचीन काल में तो यह और भी विशाल था (उस समय पाकिस्तान, बांगलादेश, श्रीलंका आदि सब भारत के ही अभिन्न अंग थे) । पारम्परिक परिभाषा के अनुसार (विष्णु पुराण, II, 3.1) "हिन्द महासागर के उत्तर में और हिमालय पर्वत के दक्षिण में जो देश है, उसे भारतवर्ष कहते हैं ।" साथ ही भारत का इतिहास और संस्कृति बहुत प्राचीन है । महान सिन्धु सभ्यता (ई० पूर्व लगभग 3000) से तो इस देश की विकसित सभ्यता और संस्कृति पर प्रचुर ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध है । पिछली 5000 साल की लम्बी अवधि में इतने बड़े देश में हमेशा राजनैतिक एकता की उम्मीद नहीं की जाती थी और विषमतायें भी थीं । इसके अतिरिक्त आने-जाने के साधन धीमे और सीमित होने से निरन्तर सम्पर्क बनाये रखना कठिन था । अतः इसमें आश्चर्य नहीं होना चाहिये कि गणना करने के लिये हमें अनेक सूचियाँ भारत के प्राचीन और मध्ययुगीय ग्रन्थों में देखने को मिलती हैं ।

दशोत्तर गणना की विभिन्न कोटियों के नामों की कुछ मुख्य सूचियाँ इस प्रकार हैं ।

1. *आर्यभट्‌ट प्रथम (जन्म ई० सन् 476) की सूची*

इन्होंने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ *आर्यभटीय* में केवल दश नामों की सूची दी है जिनमें से

पहले सात नाम वही हैं जो मेधातिथि की सूची में हैं । इसके बाद 10^7 के लिये "कोटि" शब्द आया है, जो कोडि, क्रोड़ि, इत्यादि रूप लेता हुआ अब "करोड़" बन गया है, और जिससे अंग्रेजी का "Crore" (क्रोर या क्रोड़) निकला । आर्यभट की सूची "वृन्द" ($=10^9$) के साथ समाप्त हो जाती है । व्यावहारिक दृष्टि से यह सूची भारत के लिये पर्याप्त नहीं थी ।

(ii) *श्रीधर की सूची (ई० सन् 700 से 800 तक, लगभग)*

भारत में यह सूची बहुत लोकप्रिय थी । इसमें 18 संज्ञाएं हैं जो उत्तरी भारत में बहुत कुछ मानक (Standard) थीं । वे हैं – एक, दश, शत, सहस्र, अयुत, लक्ष (या लक्ष्य), प्रयुत ($=10^6$), कोटि, अर्बुद, अब्ज (या अब्द), खर्व ($=10^{10}$), निखर्व, महासरोज, शंकु (या शंख), सरितांपति, अन्त्य, मध्य, और परार्ध ($=10^{17}$)।

विष्णुपुराण के अनुसार गणना के 18वें स्थान का नाम परार्ध है जो उस काल की अवधि के आधे को निरूपित करती है जिसके अन्त में प्राकृत प्रलय होगी । श्रीधर के समय के पहले भारतीय संस्कृति में 18 संख्या परम्परागत महत्व ग्रहण कर चुकी थी,. जैसे *महाभारत* के 18 पर्व, *गीता* के 18 अध्याय, पुराणों की संख्या 18, स्मृतियाँ 18, *ज्योतिषप्रवर्तक* 18 इत्यादि । हो सकता है कि इसी महत्व से सूची में 18 संज्ञाएँ ही रखी गई हों ।

जो भी हो, श्रीधर की सूची ही कभी-कभी थोड़े परिवर्तन के साथ, श्रीपतिकृत *गणित तिलक* (ई० 1040 के लगभग), भास्कर रचित *लीलावती* (ई. 1150), हेमचन्द्र द्वारा संग्रहित *अभिधान चिन्तामणि* (12 वीं शताब्दी), तथा नारायण पंडित कृत *गणित कौमुदी* (ई. 1356) इत्यादि में पाई जाती है ।

(iii) *राजा भोज की सूची (11 वीं शताब्दी)*

भारतीय इतिहास में धार नगरी के राजा भोज का नाम बहुत प्रसिद्ध है । राजा होने के साथ-साथ वह विद्वान भी थे और अनेक ग्रंथों के लेखक भी जैसे *राजमृगांक* (ज्योतिष पर), राज *मार्तण्ड* (वैद्यकी पर), *युक्तिकल्पतरू* (शिल्पशास्त्र पर) इत्यादि । अपने *समरांगन-सूत्रधार* ग्रन्थ में भोज ने 20 दशोत्तर संज्ञाओं की सूची दी है जिनमें से प्रथम 9 नाम वही हैं जो मेधातिथि की सूची में हैं । उसके बाद के 11 नाम इस

प्रकार हैं -

वृन्द, खर्व (10^{10}), निखर्व, शंकु, पद्म, अम्बु, मध्य, अन्त्य, पर् , अपर् , और परार्ध (10^{19})।

(iv) *महावीर की सूची (लगभग 850 ई.)*

इन्होंने अपने *गणित सार संग्रह* में 24 दशोत्तर संज्ञाएँ दी हैं । इसका कारण यह था कि यह जैन थे और जैन धर्म में तीर्थंकरों की संख्या 24 है । जिस प्रकार श्रीधर की सूची उत्तरी भारत के लिये मानक थी, उसी प्रकार महावीर की 24 संज्ञाएँ दक्षिण भारत के लिये । नाम इस प्रकार हैं -

एक, दश, शत, सहस्र, दश सहस्र, लक्ष, दशलक्ष, कोटि, दशकोटि, शतकोटि, अर्बुद, न्यर्बुद, खर्व, महाखर्व, पद्म, महापद्म, क्षोणी, महाक्षोणी, शंख ($=10^{18}$), महाशंख, क्षिति, महाक्षिति, क्षोभ, और महाक्षोभ ($=10^{23}$)।

इस सूची में एक विशेष बात यह है कि उत्तरार्ध में "महा" शब्दांश का नियमित प्रयोग किया गया ।

(v) *बौद्धसूची*

दशगुणोत्तर संज्ञाओं की यह सबसे बड़ी सूची है जिसमें 60 नाम थे । समय के विचार से भी यह लगभग 2000 वर्ष पुरानी है । लेकिन इस सूची के विषय में सबसे विचित्र बात यह है कि जब वसुबन्धु (ई. 5 वीं शताब्दी) ने इसे अपने *अभिधर्म कोष* (III, 93) के स्वोपज्ञ भाष्य में उद्धृत किया तो अंत में "अष्टकं मध्याद् विस्मृतम्" ऐसा लिखा है । अर्थात् उनके समय के पहले ही बीच के आठ नाम लुप्त हो चुके थे । शेष 52 नाम वसुबन्धु ने दिये हैं, जिनमें अन्तिम है "असंख्यम्" (10^{59}) ।

अर्जुन-गौतम संवाद

बहुत बड़ी संख्याओं के बोलने तथा शब्दों में लिखने के लिये दशगुणोत्तर संज्ञाएँ पर्याप्त न थीं । बहुत ही लम्बी सूचियाँ बनाई तो जा सकती थीं किन्तु उनका उपयोग व्यावहारिक

दृष्टि से बड़ा असुविधापूर्ण होता । अतः प्राचीन काल से ही भारत में अन्य उच्च प्रणालियाँ विकसित की गई । इनमें से शत, लक्ष, और कोटि गुणोत्तर के उदाहरण हम यहाँ देंगे।

एक शतोत्तर प्रणाली का रोचक वर्णन सुप्रसिद्ध बौद्ध ग्रन्थ *ललित विस्तर* में मिलता है जिसे ईसा पूर्व की प्रथम शताब्दी में लिखा गया था । ग्रन्थ के अनुसार राजा शुद्धोदन ने घोषणा की कि राजकुमार गौतम (बोधिसत्व) के विवाह के लिये कन्या का चयन केवल गुणों के आधार पर किया जायेगा, न कि जाति, कुल व गोत्र से । राज्य में घण्टा-घोषणा कर दी गई ।

एक हफ्ते बाद दण्डपाणि की सुपुत्री गोपा नाम की शाक्य कन्या राजकुमार गौतम के योग्य समझी गई । लेकिन जब विवाह की बात उठी तो दण्डपाणि ने अपने कुल धर्म की बात उठा दी । उसके अनुसार, कन्या का पाणिग्रहण वही कर सकता था जो अपनी शक्ति और कला का प्रदर्शन करके अन्य प्रतियोगियों की तुलना में अपनी श्रेष्ठता सिद्ध कर सके ।

इस पर राजा शुद्धोदन को बड़ी चिन्ता हुई । लेकिन राजकुमार गौतम बोले –

"है कोई ऐसा जो मेरे सामने शिल्पप्रदर्शन में टिक सके ।"

"तो क्या तुम प्रतियोगिता के लिये तैयार हो" राजा ने पूछा ।

"मैं सरलता से विजय पा लूंगा" राजकुमार ने तुरंत कहा ।

फिर क्या था । राज्य में घण्टा-घोषणा करवा दी गई । एक सप्ताह बाद प्रतियोगिता हुई । प्रख्यात शिल्पज्ञ इकट्ठे हुए

सुन्दर सुसज्जित गोपा हेतु जय-पताका स्थापित करते हुए, उसके पिता दण्डपाणि ने उच्च स्वर से घोषणा की कि शक्ति और कला प्रदर्शन में जो भी जीतेगा, यह कन्या उसी के गले में जयमाला डालेगी ।

परंपरानुसार जिस प्रकार त्रेतायुग में भगवान विष्णु के अवतार राम ने शिव धनुष तोड़कर अपनी शक्ति का प्रदर्शन करके सीता स्वयंवर जीता था । उसी प्रकार इस गोपा स्वयंवर में गौतम बुद्ध के रूप में उपस्थित विष्णु के नवें अवतार से कोई अन्य किस प्रकार बाजी मार सकता था ।

शक्ति प्रदर्शन के समय गौतम ने रथ में बैठे हुए एक पैर बाहर निकाला । पैर के

अँगूठे मात्र से एक विशालकाय हाथी को पूँछ पकड़ कर खूब घुमाया और नगर के बाहर मीलों दूर फेंक दिया। अचम्भे की बात तो क्या, इस शक्ति प्रदर्शन से लोगों में हाहाकार मच गया। अन्य प्रतियोगी ठंडे पड़ गये।

परीक्षण अन्य विशेष शिल्प कलाओं में भी हुये। चौंसठ लिपियों की जानकारी होने से लिपिज्ञान में भी गौतम की श्रेष्ठता थी। लिपि विशेषज्ञ आचार्य विश्वामित्र ने स्वयं गौतम की प्रशंसा में ये शब्द कहे थे –

मनुष्य लोकेऽथ च देवलोके,
गन्धर्व लोकेऽप्यसुरेन्द्रलोके।
यावन्ति केचिल्लिपि सर्वलोके,
तत्रैष पारंगतु सुद्धसत्वः ।।

अब गणित-ज्ञान के परीक्षण की बारी आई। इस क्षेत्र में गौतम के कौशल को जानने के लिये लोग बड़े उत्सुक थे। संख्या गणना में पारंगत शाक्य गणितज्ञ महामात्र अर्जुन को साक्षी बनाया गया। उस समय गौतम बुद्ध ने अपनी गणित-प्रतिभा का जो प्रदर्शन किया था, उससे सब लोग आश्चर्यचकित हो गये थे और अपने आसनों से उठकर हाथ जोड़कर "जयति जयति भो सर्वार्थसिद्धः कुमारः" कहकर उनको नमस्कार किया था।

उस समय प्रचलित शतगुणोत्तर गणना-प्रणाली का दिग्दर्शन हमें अर्जुन और गौतम के बीच हुए संवाद से होता है। गणितज्ञ अर्जुन ने गौतम से पूछा –

"कुमार! क्या तुम कोटि (करोड़) से आगे की शतोत्तर गणना जानते हो ?"

गौतम (बोधिसत्व) – "हाँ, जानता हूँ, और गणना भी कर सकता हूँ"। अर्जुन – "तो बताओ कि कोटि से आगे की शतोत्तर गणना किस प्रकार होती है।"

गौतम ने कहा – "सौ कोटि, अयुत कहलाता है। ...."

इस प्रकार बताई गई शतोत्तर गणना को तालिका रूप में ऐसे दिखला सकते हैं –

100 कोटि	=	1 अयुत
100 अयुत	=	1 नियुत
100 नियुत	=	1 कंकर
100 कंकर	=	1 विवर

100 विवर	=	1 अक्षोभ्य
100 अक्षोभ्य	=	1 विवाह
100 विवाह	=	1 उत्संग
100 उत्संग	=	1 बहुल
100 बहुल	=	1 नागबल
100 नागबल	=	1 तिटिलम्भ
100 तिटिलम्भ	=	1 व्यवस्थान प्रज्ञाप्ति
100 व्यवस्थान प्रज्ञाप्ति	=	1 हेतुहिल
100 हेतुहिल	=	1 करकु
100 करकु	=	1 हेत्विन्द्रिय
100 हेत्विन्द्रिय	=	1 समाप्तलम्भ
100 समाप्तलम्भ	=	1 गणनागति
100 गणनागति	=	1 निरवद्य
100 निरवद्य	=	1 मुद्राबल
100 मुद्राबल	=	1 सर्वबल
100 सर्वबल	=	1 विसंज्ञागती
100 विसंज्ञागती	=	1 सर्वसंज्ञा
100 सर्वसंज्ञा	=	1 विभूतंगमा
100 विभूतंगमा	=	1 तल्लक्षण

इस प्रकार एक तल्लक्षण बराबर होगा, 100^{23} कोटि $= 10^{53}$ अर्थात्, तल्लक्षण $= 10^{53}$

लेकिन बात यहाँ समाप्त नहीं होती । यह तो मात्र तल्लक्षण गणनाचक्र की बात थी। गौतम ने इसके आगे आठ और गणनाचक्रों का उल्लेख किया है जिनके नाम हैं – ध्वजाग्रवती, ध्वजाग्रनिशामणी, वाहनप्रज्ञाप्ति, इंगा, कुरुट, कुरुटावि, सर्वनिक्षेपा और अग्रसारा। यदि प्रत्येक गणनाचक्र में 23 (ऊपर की तरह) शतोत्तर संज्ञाएँ हों, तो अंतिम अग्रसारा गणना चक्र की अन्तिम संज्ञा से जो संख्या निरूपित होगी वह

$= 10^{53+8\times 46} = 10^{421}$

अर्थात् अंक 1 पर 421 शून्य!

गणितज्ञ अर्जुन की जिज्ञासा शान्त करने के लिये, गौतम ने परमाणु (atom) तक पहुँचने वाली सूक्ष्म गणना भी बताई। इसके अनुसार एक अंगुल (लगभग ¾ इंच) लम्बी पंक्ति में समा जाने वाले परमाणुरजों (atomic particles) की संख्या 7^{10} होगी। इस विषय की चर्चा विस्तार से अन्यत्र की गई है (अध्याय 10 देखिये)।

श्रीराम का सैन्य बल

करोड़ से आगे लक्षगुणनोत्तर गणना-प्रणाली का एक सुन्दर उदाहरण हमें *वाल्मीकि रामायण* के युद्धकाण्ड में मिलता है। विशाल सैन्य बलों का संक्षिप्त वर्णन करने में यह प्रणाली बड़ी उपयुक्त समझी जाती थी। श्रीराम की सेना को लंका पहुँचाने के लिये समुद्र पर 100 योजन लम्बा और 10 योजन चौड़ा एक बहुत बड़ा पुल बनाया गया जिसका निर्माण विश्वकर्मा के सुपुत्र शिल्पी नल द्वारा किया गया। अपार वानर सेना पुल को पार करके जब लंका पहुँची तो रावण भयभीत हो गया। उसने गुप्तचरों के द्वारा विपक्ष सैन्यबल का पता लगवाया।

श्रीराम की विशाल सेना की संख्या ज्ञात करने के लिये शुक नाम के गुप्तचर ने उस समय प्रचलित जिस गणना-प्रणाली का उपयोग किया वह इस प्रकार थी –

शतं शत सहस्राणां कोटिमाहुर्मनीषिणः ।
शतं कोटिसहस्राणां शङ्.कुरित्यभिधीयते ॥ 33 ॥
शतं शङ्कुसहस्राणां महाशङ्.कुरिति स्मृतः ।
महाशङ्कुंसहस्राणां शतं वृन्दमिहोच्यते ॥ 34 ॥
शतं वृन्दसहस्राणां महावृन्दमिति स्मृतम् ।
महावृन्दसहस्राणां शतं पद्मिहोच्यते ॥ 35 ॥
शतं पद्मसहस्राणां महापद्ममिति स्मृतम् ।
महापद्मसहस्राणां शतं खर्वमिहोच्यते ॥ 36 ॥

शतं खर्वसहस्राणां महाखर्वमिति स्मृतम् ।
महाखर्वसहस्राणां समुद्रमभिधीयते ।
शतं समुद्रसहस्रमोघ इत्यभिधीयते ॥ 37 ॥
शतं मोघसहस्राणां महौघ इति विश्रुतः ।

(वाल्मीकि रामायण, युद्धकाण्ड, गीता प्रेस द्वारा प्रकाशित, पृ. 1124)

सरल संस्कृत में वर्णित इस लक्षोत्तर प्रणाली को तालिका के रूप में ऐसे लिखा जा सकता है –

100 लाख	=	1 कोटि = 10^7
एक लाख कोटि	=	1 शंकु = 10^{12}
1 लाख शंकु	=	1 महाशंकु = 10^{17}
1 लाख महाशंकु	=	1 वृन्द = 10^{22}
1 लाख वृन्द	=	1 महावृन्द = 10^{27}
1 लाख महावृन्द	=	1 पद्म = 10^{32}
1 लाख पद्म	=	1 महापद्म = 10^{37}
1 लाख महापद्म	=	1 खर्व = 10^{42}
1 लाख खर्व	=	1 महाखर्व = 10^{47}
1 हजार महाखर्व	=	1 समुद्र = 10^{50}
1 लाख समुद्र	=	1 ओघ = 10^{55}
1 लाख ओघ	=	1 महौघ = 10^{60}

इस लक्षगणनोत्तर प्रणाली का प्रयोग करके शुक ने रावण को बताया कि श्रीराम की सेना में योद्धाओं की संख्या थी –

1000 कोटि, 100 शंकु, 1000 महाशंकु; 100 वृन्द, 1000 महावृन्द, 100 पद्म, 1000 महापद्म, 100 खर्व, 100 समुद्र, 100 महौघ, 10^7 महौघ, तथा 10^7 समुद्र । साथ ही सेनापति वानरराज सुग्रीव और उनके (चार) सचिव ।

अतः राम का सैन्यबल

$$= 10^{10} + 10^{14} + 10^{20} + 10^{24} + 10^{30} + 10^{34} + 10^{40} + 10^{44} + 10^{52} + 10^{57} + 10^{62} + 10^{67} + 5$$

जी हाँ, इतनी बड़ी सेना राम की सेवा में लगी थी जिससे तुलसीदास की उक्ति "राम ते अधिक राम कर दासा" शाब्दिक अर्थ में चरितार्थ होती है ।

ऊपर पिछले एक अध्याय में, हम लिख चुके हैं कि हमारी पृथ्वी का भूमध्य-रेखीय व्यास 7927 मील है । अतः इसकी सतह का क्षेत्रफल लगभग 20 करोड़ वर्गमील है (सूत्र $4\pi r^2$ से) ।अर्थात् पृथ्वी का क्षेत्रफल

$= 20 \times 10^7 \times (1760 \times 3)^2$ वर्गफीट जो कि 10^{16} वर्गफीट से कम है । अतः केवल 10^{67} योद्धाओं के लिये ही, 10^{50} से ज्यादा पृथ्वियों के बराबर क्षेत्रफल चाहिये (जब एक योद्धा के लिये एक वर्ग फुट स्थान लें) ।

इसी से आप अंदाजा लगा सकते हैं कि रावण की लंका कितनी विशाल थी । हमारे लिये राम की सेना को निरूपित करने वाली इतनी बड़ी संख्या की कल्पना करना कठिन है । साक्षात् भगवान ही इतनी बड़ी सेना का भरणपोषण कर सकते थे ।

विविध

करोड़ से आगे कोटिगुणोत्तर गणना की एक मनोरंजक सूची काच्चायन (संस्कृत में कात्यायन) कृत पाली-व्याकरण में मिलती है । संज्ञाएँ इस प्रकार थीं –

कोटि = 10^7 अर्थात् 1 करोड़

कोटि-कोटि = पकोटि = 10^{14}

कोटि पकोटि = कोटिप्पकोटि = 10^{21}

कोटि कोटिप्पकोटि = नहुत = 10^{28}

कोटि नहुत = निन्नहुत = 10^{35}

कोटि निन्नहुत = अक्षोभिनि = 10^{42}

कोटि अक्षोभिनि = बिंदु = 10^{49}

कोटि बिंदु = अब्बुद = 10^{56}

इसी प्रकार आगे निरब्बुद, अहह, अबब, अतत, सोगंधिक, उप्पल, कुमुद, पुंडरीक, पदुम, कथान, महाकथान, और असंख्येय संख्या-संज्ञाएँ बनती हैं । इस तरह "असंख्येय" का मान

(कोटि^{20} = 10^{140} होता है । यह एक बहुत बड़ी संख्या है । ज्ञात विश्व में परमाणुओं की संख्या लगभग 10^{110} है, जो ऊपर दी गई "असंख्येय" संख्या के सामने नगण्य सी है । बौद्ध धर्म और दर्शन की आवश्यकता के अनुसार इतनी बड़ी-बड़ी संख्याएँ उसके मतावलम्बियों ने विकसित कीं । उदाहरण के लिये ऐसा कहा गया है कि तीन असंख्येय कल्पों के बाद बुद्धत्व प्राप्त होता है ।

बौद्ध ग्रन्थों की तरह अनेक जैन ग्रन्थों में भी बड़ी-बड़ी संख्याओं का विवेचन है । यहाँ हम उनमें से कुछ का उल्लेख करते हैं ।

1) सूक्ष्म गणना के लिये एक अंगुल को 8^{12} अवसन्नासन्न स्कंधों में विभाजित किया गया है। लेकिन एक अवसन्नासन्न स्कंध में समा जाने वाले परमाणुओं की संख्या अनंत बताई गई है ।
2) *अनुयोगद्वार सूत्र* नाम के जैन आगम, जो ईसवी सन् के आरम्भ से कुछ पहले लिखा गया, में संसार के जीवों की संख्या वह बताई गई है जो 2 से 96 बार विभाजित की जा सकती है । अर्थात् जीवों की संख्या 2^{96} है ।
3) जैन ग्रन्थों में मिलने वाली एक अन्य बड़ी संख्या "शीर्ष प्रहेलिका" नामक काल को सूचित करती है । श्वेताम्बर सम्प्रदाय में, वलभी वाचना के आधार पर, इसका मान $(8400000)^{140}$ वर्ष है । लेकिन दिगम्बर सम्प्रदाय में मथुरा वाचना के आधार पर, इसका मान $(8400000)^{36}$ वर्ष है । इस संख्या में 250 अंक (Digits) हैं ।
4) जैन दर्शन के अनुसार काल का सूक्ष्मतम अंश (Quantum) "समय" है जिसका मान x है जहाँ $x = y^{y^{\cdots\cdots}}$ (नोट - इस में y को घात में 10^{134} वार लिखना है)

   और $y = 10^{10^{10^{43}}}$

   काल के क्वांतम (Quantum) की यह गणना मुनि महेन्द्र कुमार "द्वितीय" ने अपनी पुस्तक विश्व-प्रहेलिका में की है। उनके अनुसार "समय" का मान वास्तव में x^{-x} से भी छोटा है ।

अब थोड़ा, संख्या y की विशालता पर विचार करेंगे । इसके लिए पहले चार अंकों से निरूपित की जाने वाली सबसे बड़ी संख्या पर ध्यान केन्द्रित कीजिये । यह संख्या

है (बिना किसी अन्य चिन्ह के)

$9^{9^9} = N$, कहो !

यहाँ, 9^9 का मान तो 38,74,20,489 होता है ।

अतः $9^{9^9} = 9^{387420489} = n$, कहो ।

इसके मान का अन्दाज ही केवल लगाया जा सकता है, वास्तविक मान जानना तो बहुत कठिन काम है । वास्तव में संख्या n में 30 करोड़ के करीब अंक होंगे । उसको सामान्य नाप के अंकों का प्रयोग करके एक पंक्ति में लिखा जाये तो वह लगभग 1000 मील लम्बी होगी । इसको किताब के रूप में छापा जाये तो; 800 पृष्ठ वाली पुस्तक जैसे करीब 30 खण्ड चाहिये, जबकि प्रत्येक पृष्ठ पर लगभग 1500 अंक हों । लेकिन यह तो सिर्फ n का मान है । इच्छित संख्या N को प्राप्त करने के लिये 9^n निकालना पड़ेगा, जोकि लगभग असम्भव है ।

जब N का यह हाल है, तो y का क्या होगा, क्योंकि y का मान N से भी बढ़कर है । संख्या x की तो बात उठाने की भी कोई हिम्मत नहीं कर सकता ।

अध्याय 4

भारतीय अंकों की विजय

"शून्य के आविष्कार तथा इसके महत्व की जितनी भी प्रशंसा की जाये, कम है। "कुछ नहीं" वाले इस शून्य को, न केवल एक स्थान, नाम, चिह्न या संकेत प्रदान करना, बल्कि इसमें उपयोगी शक्ति भरना, उस भारतीय मस्तिष्क की एक विशेषता है जिसने इसे जन्म दिया है। यह "निर्वाण" को विद्युत-शक्ति में बदलने जैसा है। गणित के किसी अन्य आविष्कार ने मानव की बुद्धि और शक्ति को इतना अधिक बलशाली नहीं बनाया है।"

- प्रो. जी. बी. हाल्स्टीड (1853-1922)

ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार चिन्तन के क्षेत्र में वेदान्त, साहित्य के क्षेत्र में कथा-साहित्य, भारत की संसार को सबसे बड़ी देन विज्ञान के क्षेत्र में दशमिक स्थान-मान प्रणाली (Decimal place-value system) है। संख्याओं (numbers) को संख्यांकों (numerals) में लिखने की यह प्रणाली आज सारे विश्व में इस्तेमाल की जाती है। इसको दशमिक स्थान मान प्रणाली इसलिये कहते हैं, कि इसमें आधार (base) दश है, और अंकों का मान उसके स्थान के ऊपर निर्भर करता है। आधार दश होने का मतलब है कि इस पद्धति में केवल दश अंकों या संख्या-संकेतों का उपयोग किया जाता है। इन भारतीय अंकों का देवनागरी स्वरूप है – १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, और ० तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप है –

1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9, और 0

कुछ लोग इन्हें हिन्दू, हिन्दू-अरबी (Hindu - Arabic) या इन्डो-अरेबिक इत्यादि संज्ञा भी देते हैं। संयुक्त नाम देने का आधार एक ऐतिहासिक तथ्य है। वह यह कि इस प्रणाली का जन्म तो भारत में हुआ, लेकिन पश्चिम में इसका प्रचार अरबी-भाषी लोगों के माध्यम से हुआ।

सुविधा के लिए, आगे बढ़ने के पहले, यहाँ कुछ प्रारम्भिक बातें दोहराई जाती हैं। ईसवी सन् 1947 वह वर्ष था जब हमारा देश स्वतंत्र हुआ था। संख्यांकों को लिखने में "अंकानां वामतो गतिः" नियम का पालन किया जाता है। अर्थात् अंक-स्थानों की गणना दाईं ओर से बाईं ओर की जाती है। अतः 1947 संख्या में–

इकाई के स्थान पर, अंक 7 है,

दहाई के स्थान पर, अंक 4 है,

सैकड़े के स्थान पर, अंक 9 है,

और हजार के स्थान पर, अंक 1 है।

आगे के स्थानों की संज्ञाएँ भी वही हैं जो दशगुणोत्तर गणना - प्रणाली के तदनुरूपी नाम (अध्याय 2 देखिए)। दशमिक या दशमलव स्थान-मान पद्धति के अनुसार 1947 में –

7 का मान, इकाई के स्थान पर होने से, 7×1 है,

4 का मान, दहाई के स्थान पर होने से, 4×10 है।

9 का मान, सैकड़े के स्थान पर होने से, 9×10^2 है,

और 1 का मान, हजार के स्थान पर होने से, 1×10^3 है।

अतः $1947 = 1 \times 10^3 + 9 \times 10^2 + 4 \times 10 + 7$

स्थान मान प्रणाली में सबसे ज्यादा महत्त्व शून्य संकेत का है जिसके बिना प्रणाली निर्जीव है। संख्या 305270 का अर्थ है–

$3 \times 10^5 + 0 \times 10^4 + 5 \times 10^3 + 2 \times 10^2 + 7 \times 10 + 0$

जैसा कि आसानी से देखा जा सकता है। और भी बड़ी (जी हाँ, कितनी भी बड़ी) संख्याओं के लिखने और निरूपित करने में इसी प्रकार का एक-जैसा (uniform) नियम लगता है।

इस भारतीय पद्धति की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह एक बहुत ही सरल किन्तु

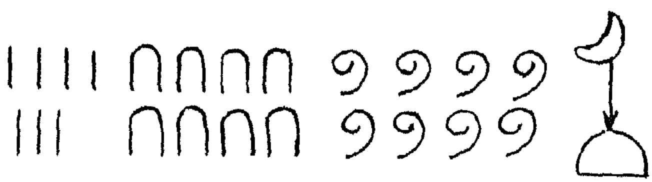
सुस्वस्थ सिद्धान्त पर आधारित है, और उसके द्वारा बड़ी से बड़ी संख्याओं को आसानी से केवल कथित दश संकेतों द्वारा प्रकट किया जा सकता है।

जरा निम्नलिखित पंक्ति को पढ़िये और उसका मतलब बताइये –

ANNO DOMINI MDCCCLXXXVII

प्राचीन रोमन पद्धति में लिखे इस वाक्यांश का अर्थ केवल सन् 1887 मात्र है जिसमें प्रसिद्ध भारतीय गणितज्ञ रामानुजन का जन्म हुआ था। (यहाँ M = 1000, D=500, C=100 इत्यादि, और Anno Domini = A. D.)

प्राचीन मिस्र की चित्रलिपि, जो दाई से बाईं ओर पढ़ी जाती थी, 1887 को इस प्रकार लिखा जायेगा (चित्र 4.1 देखिये)।



चित्र 4.1

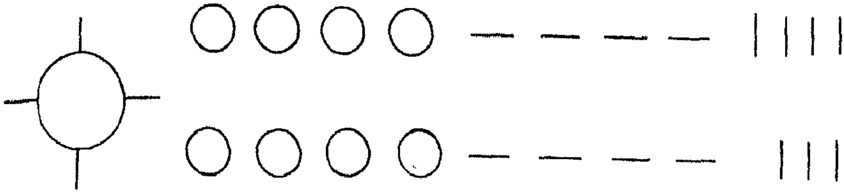
ऊपर के उदाहरणों से स्पष्ट है कि प्रचलित दशमिक पद्धति में संख्याएँ कितनी सरल और संक्षिप्त रूप में लिखी जा सकती हैं।

प्राचीन सभ्यताओं में प्रयुक्त अधिकतर संख्या-प्रणालियाँ संयोज्यता के सिद्धान्त पर चलती थीं चाहे उनका आधार कुछ भी हो। इनमें मिस्र की प्रणाली बहुत प्राचीन है (लगभग ईसवी पूर्व 2500) और दशमिक गणना पर आधारित है। क्रीट द्वीप में प्रचलित एक अन्य प्राचीन पद्धति थी जिसका आधार दश था। वहाँ रहने वाले मिनोअन (Minoan) लोग इसे ईसवी पूर्व 1500 के आस-पास इस्तेमाल करते थे। इसके मूल संख्या-संकेत इस प्रकार थे –

। (खड़ी रेखा)	एक के लिये
– (आड़ी लकीर)	दश के लिये
0 (छोटा वृत)	सौ के लिये

 (चार किरणों सहित वृत्त) हज़ार के लिये

तथा, इस हजार के चिह्न के भीतर एक आड़ी लकीर (जो दश का संकेत है) बनाने से वह दश हजार का संकेत बन जाता है। इन संकेतों का पुनर्लेखन (repetition) करके क्रमशः 9,90, 900, 9000, तथा 90,000 तक की संख्याएँ प्रकट की जा सकती हैं। अन्त में संयोज्यता सिद्धान्त लगाकर वांछित संख्या (यहाँ 99,999 तक ही) लिखी जा सकती है। उदाहरणार्थ 1887 को क्रीट की प्रणाली में चित्र 4.2 की भाँति प्रदर्शित करेंगे



चित्र 4.2

आजकल रोमन संख्यांकों में सामान्यतया सात संकेत होते हैं, जो इस प्रकार हैं:

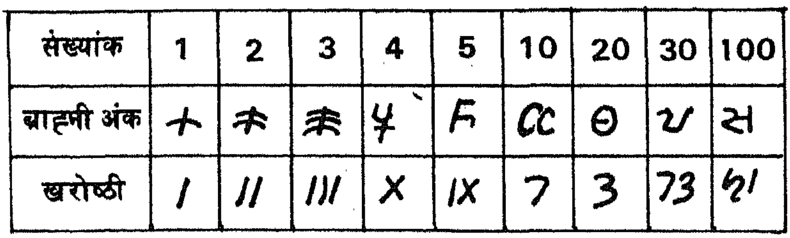
I	V	X	L	C	D	M
1	5	10	50	100	500	1000

इसके आगे केवल कुछ विशेष संकेत ही होते थे जो मानक नहीं हैं। उनका पुनर्लेखन करके ही बहुत बड़ी संख्याएँ लिखी जा सकती थीं। जैसे कॉलमना रोस्ट्रेटा (columna Rostrata) जिसका समय 260 ईसवी पूर्व है। 23 लाख लिखने के लिये 100,000 के एक विशेष संकेत को 23 बार लिखना पड़ा था। प्राचीन काल में घटाने के नियम की जगह जोड़ने का नियम ही ज्यादा प्रचलित था। घटाने का नियम अक्सर जगह बचाने के उद्देश्य से किया जाता था और वह भी कभी-कभी बड़े विचित्र तरीके से, जैसे ईसवी पूर्व 130 में लगाये गये एक मील के पत्थर (milestone) में 83 को "XXCIII" लिखा गया (न कि LXXXIII) लेकिन आश्चर्य है कि इसी पत्थर पर 74 को LXXIIII लिखा गया। सच पूछो तो जोड़ने की प्रथा काफी बाद तक चलती रही। उदाहरण के लिये, सन्

1568 में इंग्लैण्ड में छपी बेकर (Baker) की प्रसिद्ध अंकगणित की पुस्तक में 34 को 'xxxiiii' लिखा गया। (सामान्यतया 4 को घटाने का नियम (5–1) लगाकर IV लिखा जाता है न कि IIII)

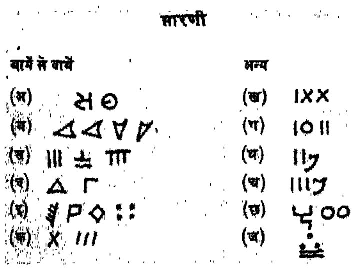
स्थान-मान प्रणाली के पहले प्राचीन भारत में दो प्रकार के संख्या संकेतों का प्रयोग शिलालेखों, ताम्रपत्रों, अभिलेखों, इत्यादि में देखने को मिलता है। ये थे ब्राह्मी, जो बाईं ओर से दाईं ओर (ब्राह्मी लिपि की तरह), तथा खरोष्ठी जिनको उल्टी दिशा में लिखा जाता था। कुछ मुख्य संकेत इस प्रकार थे (चित्र 4.3)।

तालिका



चित्र 4.3 तालिका

जैसा कि स्वाभाविक है, प्राचीन काल की विभिन्न सभ्यताओं ने अनेक प्रकार के संख्या-संकेतों और संख्यांकों को अपनाया और विकसित किया जिनमें से कुछ तो बड़े मनोरंजक थे। इन सबका वर्णन करना तो यहाँ संभव नहीं है। संलग्न सारणी (चित्र 4.4) में कुछ पुरानी सभ्यताओं के संख्या-संकेतों की एक झाँकी प्रस्तुत की गई है।



चित्र 4.4

विभिन्न प्राचीन संख्या-संकेतों के दिग्दर्शन और ऊपर किये हुए अनेक संख्यांकों की प्रणालियों के विवेचन से यह बात स्पष्ट है कि भारतीय दशमिक स्थान मान पद्धति ही सबसे सरल और वैज्ञानिक है। इस महत्वपूर्ण प्रणाली का जन्म भारत में कहाँ और कब हुआ, इसका ठीक उत्तर देना अभी संभव

नहीं है। उसके जन्मदाता या आविष्कारक के नाम के बारे में भी इतिहास कोई जानकारी नहीं देता।

यह स्थिति प्राचीन भारतीयों की स्वाभाविक अऐतिहासिक प्रवृत्तियों का नतीजा है। फिर भी यह लगभग निश्चित है कि ईसा के जन्म से पूर्व ही इस प्रणाली का जन्म भारत में हुआ था।

हमारे यहाँ प्रायः सभी विज्ञान और कलाओं का मूल स्रोत ब्रह्मा को माना जाता है, जिसने सारी सृष्टि की रचना की है। अरब इतिहासकार अल-मसूदी ईसवी 10वीं शताब्दी में लिखता है –

"सृष्टिकर्ता ब्रह्मा के आदेश से ऋषियों की एक गोष्ठी में नौ संख्यांकों (शून्य को छोड़कर) तथा ज्योतिषादि शास्त्रों का आविष्कार किया था।"

इस प्रकार की अपौरुषेय मान्यताओं से वैज्ञानिकों के साथ अन्याय होता है। उनके नाम लोग भूल जाते हैं या भुला दिये जाते हैं। कुछ विद्वान जैनाचार्य कुन्द कुन्द, जिनकी 20वीं जन्म-शताब्दी कुछ दिनों पूर्व ही मनाई गई, दशमिक स्थान-मान प्रणाली का एक संभव आविष्कारक मानते हैं।

आचार्य वसुमित्र (ईसवी 100 के लगभग) के कुछ वचनों को कमलशील द्वारा उद्धरित किया गया है, जिनसे स्पष्ट है कि ईसा की प्रथम शताब्दी में भारतीय दार्शनिक दशमिक स्थान-मान प्रणाली का प्रचुरता से निर्बाध प्रयोग करते थे। महाभारत के वन पर्व (अध्याय 134, श्लोक 16) में इस प्रणाली से गणना करने की बात कही गयी है। यवनेश्वर (ईसवी सन् 149) की तिथि, जो शक संवत् में भूत संख्या विष्णुग्रह (=71, क्योंकि उस समय ग्रहों की संख्या सात मानी गई थी, दी गई है) से प्रणाली के प्रयोग की बात सिद्ध हो जाती है। लेकिन आविष्कार इतना क्रान्तिकारी था कि उससे आये परिवर्तन को सब लोग जल्दी से अपनाने के लिये तैयार न थे। इसलिये भारत के सभी क्षेत्रों में इस प्रणाली के उपयोग में आने में कुछ और समय लगा।

विदेशों में भारतीय अंक

जब दशमिक स्थान-मान पद्धति विदेशों में पहुँची तो लोगों ने इसका स्वागत किया, लेकिन

कुछ ने इसका विरोध भी किया। दुनिया में इस प्रणाली का पूर्णतया प्रचार और प्रसार होने में लगभग एक हजार वर्ष लग गये। आखिरकार रूढ़िवादी लोग कब तक टिकते। सूर्य कब तक बादलों से ढका रह सकता है। अन्त में 17वीं शताब्दी के आते-आते भारतीय पद्धति की विजय पताका सारे सभ्य जगत में फहराई। अन्य प्रणालियों की छवि धूमिल पड़ गई। उनमें से बहुतों का स्थान तो इतिहास व संग्रहालयों को छोड़कर अन्य किसी जगह नहीं रहा। रोमन संख्यांकों का इस्तेमाल या तो शोभा के लिये करते हैं या किसी विशेष सीमित गणना के लिये, जैसे पुस्तक के आमुख या प्राक्कथन के पृष्ठों पर संख्या डालने के लिये। जरा, रोमन संख्यांकों से अंकगणित करके तो देखिये। संख्या LXVII को संख्या XXIX से गुणा कीजिये।

अब हम भारतीय दशमिक प्रणाली के विश्व विजय अभियान की गौरवपूर्ण कहानी को देखें–

यह एक व्यापक नियम है कि जब भी दो देश या सभ्यताएँ संपर्क में आती हैं, तो उनमें विचारों का आदान-प्रदान होता है। रोमन साम्राज्य के काल में भारत का पश्चिमी देशों के साथ बड़ा व्यापार होता था। करोड़ों रुपये का भारतीय माल प्रतिवर्ष रोम के बाज़ारों में बिकता था। राजनैतिक स्तर पर भी भारत से अनेक राजदूत वहाँ भेजे गये थे। अलेक्जेन्ड्रिया (Alexandria) नगर एक अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र था जहाँ व्यापार के साथ-साथ दार्शनिक व वैज्ञानिक विचारों का आदान-प्रदान होता था। प्राचीन ईरान में, पारसी परम्परा के अनुसार, सस्सानी राजा शापूर प्रथम (ईसवी 241 से 272) ने कुछ भारतीय गणित-ज्योतिष की पुस्तकों का अनुवाद पहलवी (मध्य फारसी) भाषा में करवाया था।

विश्व की संख्या-प्रणालियों के सांस्कृतिक इतिहास के विशेषज्ञ कार्ल मेनिन्जर (Meninger) की राय में इस बात की बहुत संभावना है कि भारतीय अंक-प्रणाली व्यापार के माध्यम से अलेक्जेन्ड्रिया में 5वीं शताब्दी में पहुँची हो, और फिर वहाँ से उसका प्रसार अन्य देशों में हुआ हो। वैसे कुछ भारतीय विद्वान भी उस समय वहाँ गये थे और वाणिज्य दूत सेवेरस (Severus) के अतिथि थे।

आर्यभट, प्रथम के समकालीन, रोम के बोथियस (Boethius) द्वारा लिखित एक ज्यामितीय ग्रन्थ की कुछ पांडुलिपियों में (जो 10वीं शताब्दी में लिपिबद्ध हुई थीं) भारतीय पद्धति के

अंक-संकेत दिये हुए हैं।

ईरान के ससानी सम्राट नौशेरवां खुशरो प्रथम (ईसवी 531-579) के समय वहाँ के विद्वान बरज़ूये वैज्ञानिक ज्ञानार्जन के लिये भारत आये थे। भारत से भी कुछ वैज्ञानिक वहाँ गये थे। उस समय वहाँ जुन्दीशापुर एक प्रसिद्ध अन्तर्राष्ट्रीय विद्या का केन्द्र था जहाँ से भारतीय अंक-प्रणाली की जानकारी लोगों को प्राप्त होने की पूरी संभावना थी।

मेनिन्जर का विचार है कि "नयी दुनिया" की पुरानी मय सभ्यता (6वीं से 11वीं शताब्दी) में जो बीस आधार वाली स्थान-मान प्रणाली प्रचलित थी वह संभवतः भारत से ली गई थी।

चीन में बौद्ध धर्म प्रचारार्थ जो सैकड़ों भारतीय विद्वान और हज़ारों ग्रन्थ पहुँचे, उनके माध्यम से भारतीय गणित और ज्योतिष का कुछ ज्ञान भी वहाँ हस्तान्तरित हुआ (अध्याय 10 देखिये)। ईसवीं 7वीं शताब्दी के चीनी लेखक वाई चेंग (Wei Cheng) ने अपने शुई राजवंश के प्रामाणिक इतिहास शुईशू (Sui Shu) में अनेक भारतीय गणित-ग्रन्थों के चीनी अनुवादों का उल्लेख किया है, जैसे *ब्रह्म अंकगणित के नियम* तथा *ब्रह्म अंकगणित शास्त्र।* दुर्भाग्य से ये सब ग्रन्थ अब लुप्त हो गये हैं। इसलिये इनमें भारतीय अंकों का कितना विवेचन था, यह कहना संभव नहीं है।

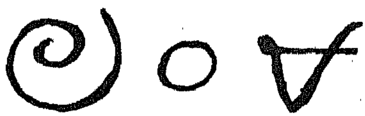
लेकिन फारस में दजला-फरात नदियों की घाटी में भारतीय दशमिक स्थान-मान प्रणाली की ख्याति 7वीं शताब्दी में निश्चत रूप से डंका बजा रही थी। उस समय फरात नदी के तट पर स्थित केन्नेशरे (Kenneshre) के मठ में एक सीरीयाई पंडित सेवेरस सेबोख्त (Severus sebokht) रहते थे जिन्होंने भारतीय प्रणाली की बहुत सराहना की थी। ईसवी सन् 662 में उन्होंने ये शब्द कहे थे।

"मैं भारतीयों के सभी शास्त्रों का यहां विवेचन नहीं करूँगा ..। मैं उनकी ज्योतिष विज्ञान की उन विलक्षण गवेषणाओं की भी चर्चा नहीं करूँगा, जो यूनानियों और बॅबीलोन वालों से ज्यादा सूक्ष्म हैं। भारतीयों की संगणना वर्णनातीत है। मैं केवल यही कहना चाहता हूँ कि यह संगणना (computation) नौ संख्या-संकेतों से की जाती है...।"

प्राचीन भारतीय परम्परा में भी अंक नौ ही माने जाते थे (तुलना कीजिये कि भूतसंख्या के रूप में भी "अंक" का मतलब "नौ" ही होता है), तथा शून्य को अलग से गिना जाता

था। अतः सेबोख्त ने केवल "नौ" संकेतों का उल्लेख किया है। लेकिन उनका वास्तविक मतलब नौ अंक तथा शून्य मिलाकर दशमिक प्रणाली से ही था, अन्यथा सराहना की कोई बात न थी। अन्य प्राचीन लेखक भी प्रायः नौ अंकों का ही उल्लेख करते थे, जैसे अल-मसूदी जिसकी बात हम ऊपर कर चुके हैं। सेबोख्त को भारतीय पद्धति की जानकारी सम्भवतः जुन्दीशापुर के प्रसिद्ध अन्तर्राष्ट्रीय विद्या केन्द्र से प्राप्त हुई थी।

उधर दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों में भारतीय संस्कृति के प्रसार के साथ ही यहाँ की अंकपद्धतियों का प्रचलन हुआ। कम्बोडिया (प्राचीन कम्बुज) में ऐसे अनेक अभिलेख पाये गये हैं जिनमें शकाब्द भूतसंख्याओं में निरूपित किये हैं जैसे ब्याङ् स्थान से प्राप्त एक मन्दिर अभिलेख में शक 546 को "ऋतुवारिनिधिइन्द्रिय" से व्यक्त किया गया है। हालांकि इस निरूपण में स्थान-मान सिद्धान्त निहित है, फिर भी सीधे दशमिक प्रणाली के अंकों का भी पर्याप्त प्रमाण मिला है। इनमें सम्बौर का श्रीविजय स्तम्भलेख (ईसवी सन् 683) और पलेबंग (सुमात्रा) का मलय अभिलेख (ईसवी 684)। पुष्टि के लिये कोरक पुर (बंका) के मलय-अभिलेख का नमूना देखिये (चित्र 4.5)।



चित्र **4.5**

अर्थात् शक 608 या 716 ईसवी। जावा में दिनय संस्कृत अभिलेख की तिथि शक 682 (अर्थात् 760 ई.) अंकों के अलावा भूसंख्या "नयनवसुरस" में भी व्यक्त की गई है। भारतीय स्थान-मान प्रणाली में उल्लेखित पोनगर (चम्पा) के अभिलेख का काल ईसवी 813 और बकुल अभिलेख का सन् 839 है।

चीन के वैभवशाली थांग (Thang) राजवंश के शासन काल में वहाँ भारतीय सिद्धान्त ज्योतिष का बहुत बोलबाला था। अनेक भारतीय ज्योतिषी चीन की राजकीय वेधशाला में कार्यरत थे। चीनी सम्राट की आज्ञा से भारतीय भिक्षु गौतम सिद्धार्थ (8वीं शताब्दी) ने *नवग्रहकरण* ग्रंथ का संस्कृत से चीनी भाषा में अनुवाद किया था। चीनी अनुवाद का नाम च्यूचीली (Chiu Chi-li) था, और इसमें शून्य को एक मोटे बिन्दु (thick dot) से निरूपित किया गया है। शून्यांक का ऐसा रूप भारत में बक्षालीपोथी में (7वीं शताब्दी के आसपास

या उससे पहले) में देखने को मिलता है। कम्बुज के सम्बौर स्थान से प्राप्त श्रीविजय स्तम्भ-लेख जिसका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं, में भी शकाब्द 605 लिखने में शून्य को मोटे बिन्दु के रूप में दिया गया है।

फिर पश्चिम की ओर दूर-दूर तक

प्राचीन काल में बल्ख (मध्य एशिया) बौद्ध धर्म का प्रमुख केन्द्र था। वहाँ का नवसंघाराम विहार बहुत प्रसिद्ध था। अरब स्रोतों में इसे नववहार और यहाँ के अरहतों को परमक (बरमक) कहा गया है । ईसवी 7वीं शताब्दी में अरबों ने इसे नष्ट कर दिया तथा अरहतों को इस्लाम धर्म अंगीकार करने पर बाध्य किया गया। उनको बगदाद ले जाया गया जहाँ उन्होंने खलीफा की विचारधारा पर अपना प्रभाव डाला। धीरे-धीरे भारत के ज्योतिष, गणित, और भिषज् संबंधी ग्रंथों में खलीफा की रुचि बढ़ी। एक अरहत का पुत्र, जिसका नाम खालिद इब्न बरमक था, खलीफा अलमन्सूर का वजीर भी बना।

खलीफा अलमन्सूर ने राजधानी बगदाद में संस्कृत के एक सिद्धान्त ज्योतिष ग्रन्थ का अरबी भाषा में अनुवाद करने का आदेश दिया ताकि अरब लोग ग्रहगणित सीख सकें। आठवीं शताब्दी में किये गये इस अरबी अनुवाद का शीर्षक "अल सिन्दहिन्द अलकबीर" (या "महासिद्धान्त") था, और अनुवादक थे अलफजारी तथा तारिक पुत्र यकूब। अब क्या था लोगों में गणित और ज्योतिष के प्रति रुचि बढ़ी। *सिन्दहिन्द* में निहित भारतीय ज्योतिष के साथ दशमिक स्थान-मान प्रणाली का प्रचार भी अरबी जगत में होने लगा। सिन्दहिन्द पर आधारित अनेक ग्रन्थ लिखे गये।

ईसवी सन् 825 के लगभग प्रसिद्ध अरबी वैज्ञानिक अबूजफर मुहम्मद अल-ख्वारिजमी (al-Khwarizmi) ने भारतीय अंक प्रणाली पर एक पुस्तक लिखी जिसने इस प्रणाली पर आधारित अंकगणित का जोरशोर से प्रचार करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उसने यह सिद्ध कर दिया कि भारतीय विधि सर्वश्रेष्ठ होने के साथ अत्यन्त सरल भी है।

दुर्भाग्य से अलख्वारिजमी की पुस्तक मूल अरबी भाषा में उपलब्ध नहीं है। लेकिन इतिहासज्ञ अलकिफती (al-Qifti) के अनुसार उसका नाम "किताब हिसाब अलअदद अलहिन्दी"

अर्थात् "भारतीय अंकों पर आधारित हिसाब की पुस्तक" था। परिणामस्वरूप पूर्व से लेकर पश्चिम (स्पेन) तक सारी इस्लामी दुनिया में भारतीय अंकगणित छा गया।

भारतीय अंकों का उल्लेख अरबी व फारसी के अनेक लेखकों ने अपनी रचनाओं में किया है या उस विषय पर ग्रन्थ लिखे हैं। संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है –

1. सीरिया के इब्न वहशीया (ई. 855 के लगभग) ने प्राचीन लिपिमालाओं पर लिखी अपनी पुस्तक में भारतीय अंकों का जिक्र किया है।
2. अरबी दार्शनिक अलजाहिज़ (मृत्यु ई. 868 में) ने लिखा है कि "भारत के अंकों" से बड़ी बड़ी संख्याएँ भी आसानी से निरूपित की जा सकती हैं।
3. अबू यूसुफ अलकिन्दी (मृत्यु 873 के आसपास) ने "हिसाबुल हिन्दी" या ("भारतीय गणना") पर एक पुस्तक लिखी।
4. अलदीनवरी (मृत्य 895 ई.) ने भी ऐसी ही एक पुस्तक रची और उसके द्वारा व्यापार संबंधी हिसाब में भारतीय पद्धति का प्रतिपादन किया।
5. त्यूनिस (Tunis) के अबू सहल इब्न तमीम (मृत्यु 950) का हिसाब अलगुबार भारतीय गणना-पद्धति पर आधारित था।
6. अबुल हसन मसूदी ईसवी सन् 915 के आसपास भारत आये थे। उनकी बात हम ऊपर कर चुके हैं।
7. अबुल हसन अहमद अलयुक्लीदिसी ने *हिसाब अल फुसूल फी अलहिसाब अलहिन्दी* की रचना दमिश्क में हिजरी सन् 341 (तदनुसार ई. 952/953) में की थी। अरबी भाषा में रचित इस विषय की उपलब्ध पुस्तकों में यह सबसे प्राचीन है। प्रो. अहमद सलीम सैदान ने इसका अंग्रेजी अनुवाद किया जो 1978 में प्रकाशित हो चुका है।
8. अली अलमुजतबा ने *किताब अलतख्त अलकबीर फी अलहिसाब अलहिन्दी* की रचना बगदाद में 10वीं सदी में की। उनके समकालीन अलकल्वादानी ने भी ऐसा ही एक अन्य ग्रन्थ लिखा।

इसी बीच फ्रांस में गेरबर्ट (Gerbert) नामक एक व्यक्ति का जन्म हुआ जो बाद में सिल्वेस्टर द्वितीय के नाम से पोप बना। सन् 967 में वह स्पेन गया था जहाँ उसने भारतीय अंकों की जानकारी प्राप्त की। बाद में गेरबर्ट ने अपने गणित-ग्रन्थों

में इन अंकों का उपयोग किया। इनके द्वारा तत्कालीन यूरोप के विद्वानों को भारतीय अंकों की जानकारी मिली। इस प्रकार इन अंकों के प्रचार में गेरबर्ट का काफी योगदान था।

अब उपर्युक्त सूची को जारी रखते हुए कुछ और संदर्भ प्रस्तुत करते हैं।

9. दसवीं शताब्दी के अंत में इतिहासकार अलनदीम तथा दार्शनिक इखवान अस्सफा बन्धुओं ने भारतीय अंकों का उल्लेख किया है।
10. ईसवीं 11वीं शताब्दी के प्रारम्भ में कूश्यार इब्न लब्बान तथा अबूबक्र अलकरखी ने भारतीय अंकगणित पर अलग ग्रन्थ लिखे। लब्बान की मूल अरबी पुस्तक एक प्राचीन हिब्रू (Hebrew) भाषा की टीका तथा अंग्रेजी अनुवाद के साथ प्रकाशित हुई है (विस्कोन्सिन विश्वविद्यालय, 1965)।
11. अलबेरूनी ने भारत में आकर यहाँ के साहित्य और शास्त्रों का अध्ययन किया, तथा भारत पर एक प्रसिद्ध ग्रंथ (किताब अलहिन्द) सन् 1030 के आस-पास लिखा। उसकी दो अन्य पुस्तकों में से एक किताब *अलअर्कम* अंकों पर और दूसरी भारतीय अंक गणित से संबंधित थी। उसने स्पष्ट लिखा है कि उस समय अरब लोग जिन अंक संकेतों का इस्तेमाल करते थे वे "हिन्द के सर्वोत्तम अंक-संकेतों से व्युत्पन्न" हुए थे।
12. बगदाद निवासी अबुल हसन अल-नसवी ने 11वीं शताब्दी के मध्य में भारतीय अंकगणित पर फारसी में एक पुस्तक लिखी। बाद में राजा जलाअलदौला के वजीर शरफ अलमलूक के आदेश से उसका रूपान्तरण अरबी भाषा में *अलमुकनी अल हिसाब अलहिन्दी* के नाम से किया गया।
13. इब्नसीना (लगभग ई. 980-1037) ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि उसने बचपन में भारतीय अंकगणित उन धर्म प्रचारकों से सीखा था जो मिस्र देश से आकर उन दिनों उसके जन्म स्थान बुखारा में कार्यरत थे। यदि इब्नसीना इस तथ्य को न लिखते तो हम स्वप्न में भी यह कल्पना नहीं कर सकते हैं कि भारतीय अंक रूस में मिस्र होकर पहुँचे थे।
14. अली अबुल हसन (ई. 1048) ने ज्योतिष पर लिखी अपनी पुस्तक के प्राक्कथन

में दशमिक स्थान-मान प्रणाली के आविष्कार का श्रेय भारतीय दार्शनिकों को दिया है।

15. ईसवी 11वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में आमुल नगर निवासी अबुजफर अल-तबरी ने *शुमारनामे* की रचना की जो भारतीय अंकगणित पर एक पाठ्यपुस्तक है। फारसी में उपलब्ध इस विषय की पुस्तकों में यह सबसे प्राचीन है।

हम ऊपर लिख चुके हैं कि भारतीय अंकगणित पर अलख्वारिजमी द्वारा रचित मूल अरबी पुस्तक खो गयी है। सौभाग्य से 12 वीं शताब्दी में किया गया उसका लैटिन (Latin) अनुवाद *लीबेर अलगोरिजमी डिन्यूमरो इन्डोरम* ("भारतीय संख्याओं पर अलख्वारिजमी की पुस्तक") उपलब्ध है। स्पेन में सम्पन्न यह अनुवाद चेस्टर के रोबर्ट (Robert of Chester) अथवा बाथ के एडीलार्ड (Adelard of Bath) ने किया था। इस लैटिन ग्रन्थ से भारतीय अंकों का विजय अभियान तेज़ हुआ और वे सारे यूरोप में छा गये क्योंकि लैटिन भाषा का सम्मान और बोलबाला सर्वत्र था। शीघ्र ही उस ग्रंथ के अनेक अनुकूलित रूप भी तैयार किये गये जिनमें से विली के जॉहन तथा सेक्रोबोस्के के जॉहन (ई. 13वीं शताब्दी) के पाठ प्रसिद्ध हैं। वास्तव में अलख्वारिजमी का नाम नये अंकगणित से इतना जुड़ गया था कि उसके लैटिन नाम अलगोरिज्म पर किसी भी ग्रन्थ का और बाद में एक गणितीय विषय (Algorithm) विधि विशेष का नाम चल पड़ा।

इसी बीच कुछ अन्य अरबी तथा यहूदी लेखकों ने भी इस विषय पर लेखन किया। अब्राहम इब्नइजरा (मृत्यु 1167 ई.) ने हिब्रू में (Sefer ha - Mispar) ("संख्याओं की पुस्तक") में अंकों के स्थान पर अक्षरों का प्रयोग किया, लेकिन शून्य के लिये भारतीय संकेत ही लिया। मक्का निवासी अल-समव्वल (मृत्यु ई. 1180) ने भी भारतीय प्रणाली का इस्तेमाल किया।

उधर यूरोप में 13वीं शताब्दी के प्रारंभ में पीसा (इटली) के फीबोनाटची द्वारा लिखित Liber Abaci ("हिसाब की पुस्तक") पूर्णतया भारतीय अंकों पर आधारित थी। उसके इस तथा अन्य ग्रन्थों ने यूरोप में भारतीय अंकों के प्रसार में बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। 13वीं शताब्दी के अन्य उल्लेखनीय ग्रन्थ ये थे – अंग्रेज सेक्रोबोसको के जॉहन लिखित Tractatus de Arte Numerandi ("संख्या-कौशल की पुस्तिका"),फ्रांसीसी पादरी अलेक्जेन्डर

विशेष सारणी

	हिन्दी अंक	उर्दू अंक	अंतर्राष्ट्रीय अंक (अरेबिक अंक)
शून्य	०	•	0
एक	१	۱	1
दो	२	۲	2
तीन	३	۳	3
चार	४	۴	4
पांच	५	۵	5
छ:	६	٦	6
सात	७	۷	7
आठ	८	۸	8
नौ	९	۹	9

चित्र 4.6

लिखित Carmen de Algorismo (अल्गोरिज्म का गीत), चीन के छिन च्यू शाओ लिखित Su shu chiu chang (नौ अध्याय का गणित-ग्रन्थ) और पश्चिम एशिया के नसीर अलदीन अल-तूसी लिखित एक विस्तारपूर्ण अरबी ग्रन्थ।

भारतीय अंकों की विजय यात्रा में अकस्मात् एक बाधा उत्पन्न हुई। ईसवी सन् 1299 में ईर्ष्यावश फ्लोरेन्स नगर-परिषद ने व्यापार का लेखा-जोखा रखने में भारतीय अंकों के इस्तेमाल पर रोक लगा दी।

लेकिन यूरोप के विभिन्न विश्वविद्यालयों जैसे ऑक्सफोर्ड, पैरिस, पदुआ (Podua) तथा नेपल्स के प्राध्यापक भारतीय अंकगणित पढ़ाते रहे। वहाँ के अनेक देशों और भाषाओं में इस विषय की पुस्तकों का लेखन और प्रकाशन भी चलता रहा। इसका कारण यह था कि अधिकतर विद्वान और जनता उसके महत्त्व को समझ चुकी थी। यूनानी पादरी मैक्सीमस प्लेनूडेस (Maximus Planudes) द्वारा 14वीं शताब्दी में रचित "भारतीय अंक गणित जो महान है" (ग्रीक भाषा में) ग्रन्थ बहुत प्रभावशाली सिद्ध हुआ। अन्य लेखकों में यहूदी लेवी बेन गरसों (ई. 1321), अरबी अल-उमवी (ई. 1373 के आस पास), जर्मनी के रेजिओमोन्टेनस (ई. 1473), इटली के पीट्रो बोरघी (ई. 1484), स्पेन निवासी अल-कलासादी (15वीं शताब्दी), ब्रिटेन निवासी कुथबर्ट टेंसटाल (ई. 1522), वहीं के रोबर्ट रिकोर्डे (ई. 1542), इत्यादि मुख्य थे।

नयी दुनिया में भारतीय अंकों पर आधारित प्रथम छपी पुस्तक जुआन डीज फ्रेयले (Juan DIiez Freyle) की सुमारिओ कम्पेन्डिओसो (Sumario Compendioso) थी जो मेक्सिको में सन् 1556 में प्रकाशित हुई थी। इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय अंकों का विजय अभियान जारी रहा। यदि कट्टरवाद और ईर्ष्या नहीं होती तो जीत बहुत पहले हो गई होती और एक हजार साल का समय न लगता। 17वीं शताब्दी में लगभग सारे विश्व में भारतीय अंकों की विजय पताका फहराने लगी थी।

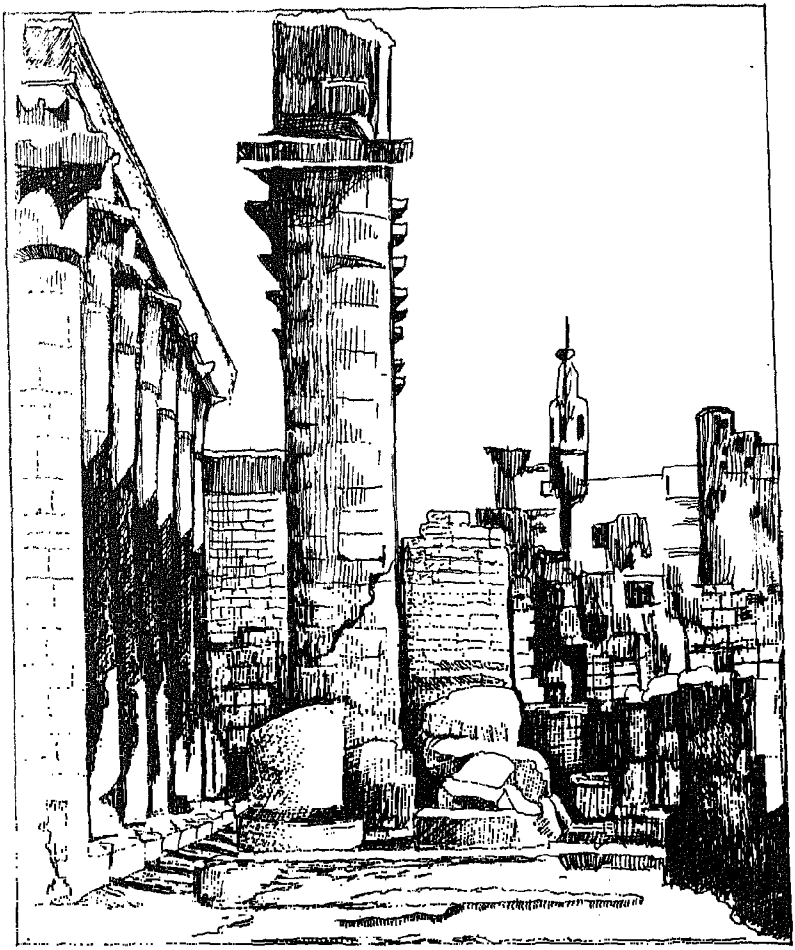
भारत सदैव शान्ति और अहिंसा के रास्ते पर चलकर ही प्रभाव डालता रहा है, बल प्रयोग द्वारा नहीं। बौद्ध धर्म का पूरे एशिया में प्रचार और प्रसार होना भारत की पहली बड़ी सांस्कृतिक विजय थी। सारी सभ्य दुनिया द्वारा भारतीय दशमिक प्रणाली का अपनाया जाना भारत की दूसरी बड़ी सांस्कृतिक विजय है। एक का क्षेत्र पारलौकिक ज्ञान तो दूसरे का लौकिक विज्ञान है। एक परा तो दूसरी अपरा विद्या है।

अध्याय 5

होरस की आँख के टुकड़े

प्राचीन काल में कृषि पर आधारित सभ्यताएँ बड़ी-बड़ी नदियों के किनारे ही फली-फूलीं चाहे वह भारत हो या मिस्र, मेसोपोटामिया हो या चीन। मिस्र देश की प्राचीन शानदार सभ्यता नील नदी के दोनों किनारों पर लगभग तीन हज़ार वर्षों तक (ईसवी पूर्व 3100 से ई. पूर्व 332 तक) रही, जिसके दौरान 21 वंशों के राजाओं ने वहाँ राज्य किया। उस अवधि में वहाँ बड़े-बड़े विशालकाय पिरामिडों (Pyramids) का निर्माण हुआ जिन्हें विश्व के महान् आश्चर्यों में गिना जाता है। मिस्र की प्रसिद्ध ममियों (mummies) का नाम सभी ने सुना होगा। वास्तव में यह सब मिस्री लोगों की पारलौकिक जीवन में विशेष आस्था का परिणाम था।

प्राचीन काल से ही मिस्रवासी सूर्योपासक थे। वहाँ का प्रसिद्ध सूर्य मन्दिर जिस नगर में था उसे यूनानी लोग हेलियोपोलिस (Heliopolis) कहते थे। यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि यूनानी भाषा में हेलियो का अर्थ सूर्य होता है और संस्कृत में भी सूर्य के अनेक नामों में से एक हेलिः है। उक्त सूर्य मन्दिर में एक पवित्र वेदिका थी जिसका आकार संभवतः शंकु (CONE) की तरह था। मिस्रवासियों का विश्वास था कि यह वेदिका



चित्र 5.1 मिस्र में एक सूर्य मन्दिर के भग्नावशेष

सृष्टि की रचना के समय जल से स्वयं ऊपर उठकर आने वाली वह मूर्तिमान वेदी है जिस पर भगवान सूर्य फीनिक्स (Phoenix) के रूप में प्रकट हुए थे। भारत की तरह विश्व की अन्य प्राचीन सभ्यताओं में भी ब्रह्माण्ड, और विश्व की सृष्टि, स्थिति, तथा प्रलय की पौराणिक कथाएँ प्रचलित थीं। प्राचीन मिस्र के लोगों की मान्यता के अनुसार री-अतुम (Re-Atum) के रूप में सूर्य देव की उत्पत्ति स्वयं के द्वारा सृष्टि के आदि में निर्मित मौलिक और सर्वव्याप्त जल के महासागर नुन (Nun) से हुई थी।

री-अतुम की सन्तानें थीं – वायुदेव शु (Shu) और आर्द्रता देवी तेफनूत (Tefnut) जिनसे बाद में पृथ्वी देव जेब (Geb) और गगन देवी नूत (Nut) की उत्पत्ति हुई। लगता है जैसे क्षिति जल पावक गगन समीर के पंच मूल तत्वों की भारतीय परम्परा यहाँ गूँज रही हो (क्योंकि सूर्य, अग्नि का प्रतीक है) ।

आगे के सृष्टि क्रम में, भूदेव तथा गगन देवी से जो सन्तानें हुई वे थीं ओसिरिस (Osiris), ईसिस (Isis), सेथ (Seth) तथा नेफथीस (Nephthys) । इन नौ देवी-देवताओं के अतिरिक्त, हेलियो पोलिस नगर के सूर्य मन्दिर में अन्य देवताओं की भी पूजा होती थी जिनके प्रमुख होरस (Horus) थे ।

बाद की पौराणिक कथाओं में होरस को ओसिरिस तथा ईसिस का पुत्र माना गया।

ज्येष्ठ पुत्र होने के नाते ओसिरिस ने इस पृथ्वी पर एक दयालु राजा के रूप में न्यायपूर्ण शासन किया। उनके काल में प्रजा जंगली दिनचर्या छोड़कर सभ्य जीवन व्यतीत करने लगी और लोग विभिन्न कलाओं में रुचि लेने लगे ।

लेकिन ओसिरिस का भाई सेथ बड़ी दुष्ट प्रवृति का जीवन बिताता था। अपने भाई के प्रति भी वह दुर्भावना रखता था और स्वयं राजा बनना चाहता था।



चित्र 5.2 मिस्र की ईसिस देवी

अतः ईर्ष्यावश एक दिन सेथ ने धोखा देकर ओसिरिस को मरवा डाला। उसे डर था कि कहीं ओसिरिस पुनर्जीवित न हो जाए। इसलिये उसने स्वयं अपने हाथों से ओसिरिस की लाश के टुकड़े-टुकड़े करके उन्हें मिस्र के विभिन्न भागों में दूर-दूर फिकवा दिया। दुनिया के इतिहास और साहित्य में जहाँ एक ओर भाई-भाई के अटूट प्रेम तथा त्याग की अनेक घटनाएँ व कथाएँ मिलती हैं, वहीं दूसरी ओर वैमनस्य और ईर्ष्या से भरी सत्य व काल्पनिक कहानियों की भी कमी नहीं है।

अपनी विधवा माता ईसिस को दुःखी देखकर, पुत्र होरस को बड़ा क्रोध आया और उसने अपने चाचा सेथ के प्राण लेने की प्रतिज्ञा की ताकि वह अपने पिता की मृत्यु का बदला ले सके। दोनों में भयंकर युद्ध हुआ। सेथ ने अपने भतीजे की एक आँख नोच डाली लेकिन अन्त में होरस ने सेथ को मार डाला और उसके टुकड़े टुकड़े कर दिए।

इस प्रकार होरस ने विजय पाकर निष्कंटक राज्य करने का रास्ता बना लिया। वह अपने पिता के सिंहासन पर प्रतिष्ठित हुआ और न्यायपूर्ण शासन चलाने लगा। देवताओं ने भी प्रसन्नता से इसका अनुमोदन किया । युद्ध में एक नेत्र नष्ट हो जाने से वह काना हो गया था। लेकिन थोथ (Thoth) देवता की कृपा से उसका दूसरा नेत्र भी उसे मिल गया। थोथ के नाम पर ही मिस्र में प्रचलित वर्ष के प्रथम माह का नाम रखा गया।

होरस अपने पिता ओसिरिस की भांति दया और न्याय से प्रजा का पालन करने लगा। पितृ-भक्ति के लिये वह आदर्श बन गया। इस पितृ-भक्ति तथा न्याय के लिए किए गए युद्ध में जिस आँख का उसे बलिदान करना पड़ा वह हमेशा के लिये हरेक कुर्बानी के लिये आदर्शमूर्ति की तरह मानी जाने लगी।

जब किसी वस्तु के दो बराबर भाग किये जाते हैं तो हरेक भाग को वस्तु का आधा या 1/2 भाग कहते हैं। यदि प्रत्येक आधे भाग को दो बराबर हिस्सों में विभाजित किया जाए तो हमें मूल वस्तु के चार बराबर भाग मिल जाएँगे। इनमें से प्रत्येक भाग को वस्तु का चौथाई या 1/4 भाग कहते हैं। इन चारों भागों में से प्रत्येक को हम पुनः दो बराबर भागों में बाटें तो मूल वस्तु के 8 बराबर हिस्से हो जाएँगे जिनमें से प्रत्येक को उसका 1/8 भाग कहते हैं। इसी प्रकार हम उसके 1/16, 1/32, तथा 1/64 भाग प्राप्त कर सकते हैं।

इन सब भिन्नों के अंश (numerator) में एक है, अतः इन्हें एकांशभिन्न (unit fractions) कहते हैं। यहाँ मूल वस्तु टुकड़ों-टुकड़ों में बँट गई, और इस प्रकार उसकी संपूर्णता का बलिदान हो गया। इसलिये मिस्र के लोग इन एकांश भिन्नों को होरस-नेत्र भिन्नें (Horus eye fractions) कहते थे।

होरस की आँख के विभिन्न हिस्सों से संबंधित इन एकांश भिन्नों के संकेत प्राचीन मिस्र में प्रचलित चित्रलिपि हाइरोग्लीफिक (hieroglyphic) तथा घसीटा लिपि हाइरेटिक (hieratic) से निरूपित किये गये वर्णन इस प्रकार हैं –

होरस की आँख का भाग	**भिन्न**
पुतली	1/4
पुतली से बाई तरफ का भाग	1/2
पुतली से दाई तरफ का भाग	1/16
भौंह	1/8
आँख के नीचे बनाया विशेष दंड	1/64
आँख के नीचे बाईं ओर बनी सर्पिल	1/32

एकांश भिन्नों में निरूपण

यदि किसी वस्तु के तीन बराबर भाग किए जाएँ तो प्रत्येक को उसका एक तिहाई या 1/3 भाग कहेंगे। इस प्रकार विभिन्न बराबर भाग करके हम सभी एकांश भिन्नों की कल्पना कर सकते हैं। भिन्नों का यह कुलक या समूह (Set) इस प्रकार है–

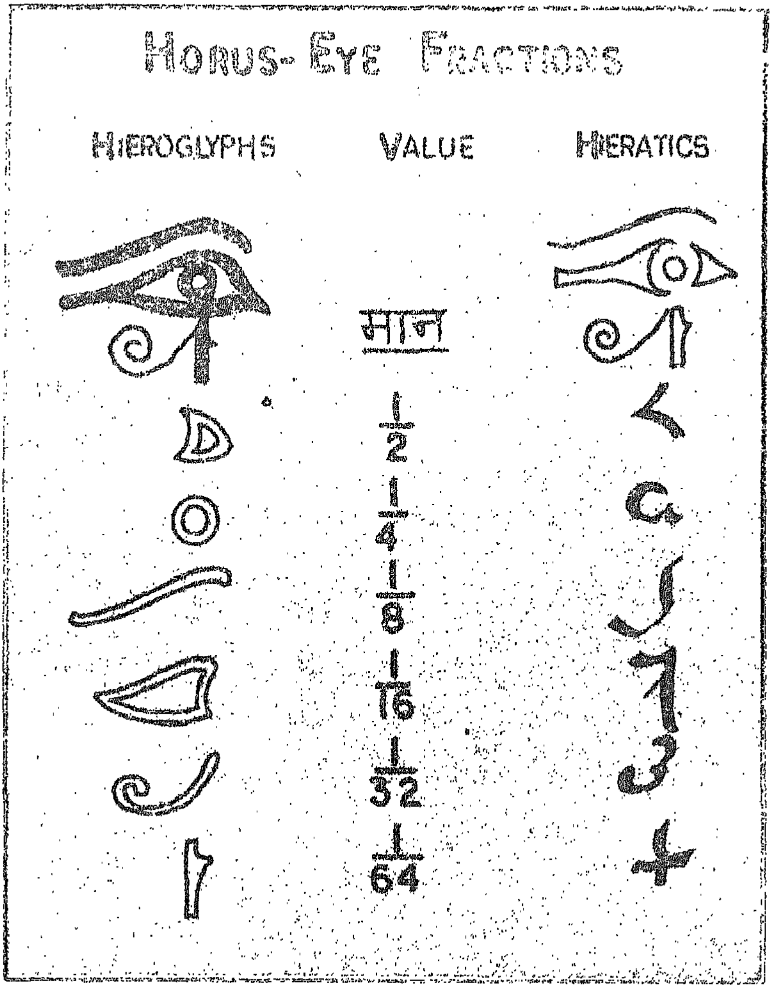
$$\frac{1}{2}, \frac{1}{3}, \frac{1}{4}, \frac{1}{5}, \frac{1}{6}, \text{-------------------------} \qquad (1)$$

या

1/N, जहाँ N = 2,3,4,5,6, ---------

इस समूह के अतिरिक्त कोई एकांश भिन्न नहीं है। यदि इकाई माप की लम्बाई के रेखाखण्ड (Segment) के N बराबर भाग किए जाएँ, तो प्रत्येक भाग की लम्बाई उसी माप में 1/N होगी।

होरस-नयन भिन्नें



चित्र 5.3 होरस-नयन भिन्नें

सूत्र

$$\frac{1}{N}=\frac{1}{N+1}+\frac{1}{N(N+1)} \qquad (2)$$

का उपयोग करके हम किसी भी एकांश भिन्न को, जितनी चाहें उतनी एकांश भिन्नों के योग के रूप में निरूपित कर सकते हैं।

उदाहरणार्थ,

$$\frac{1}{2}=\frac{1}{3}+\frac{1}{6}=\frac{1}{3}+\frac{1}{7}+\frac{1}{42}$$

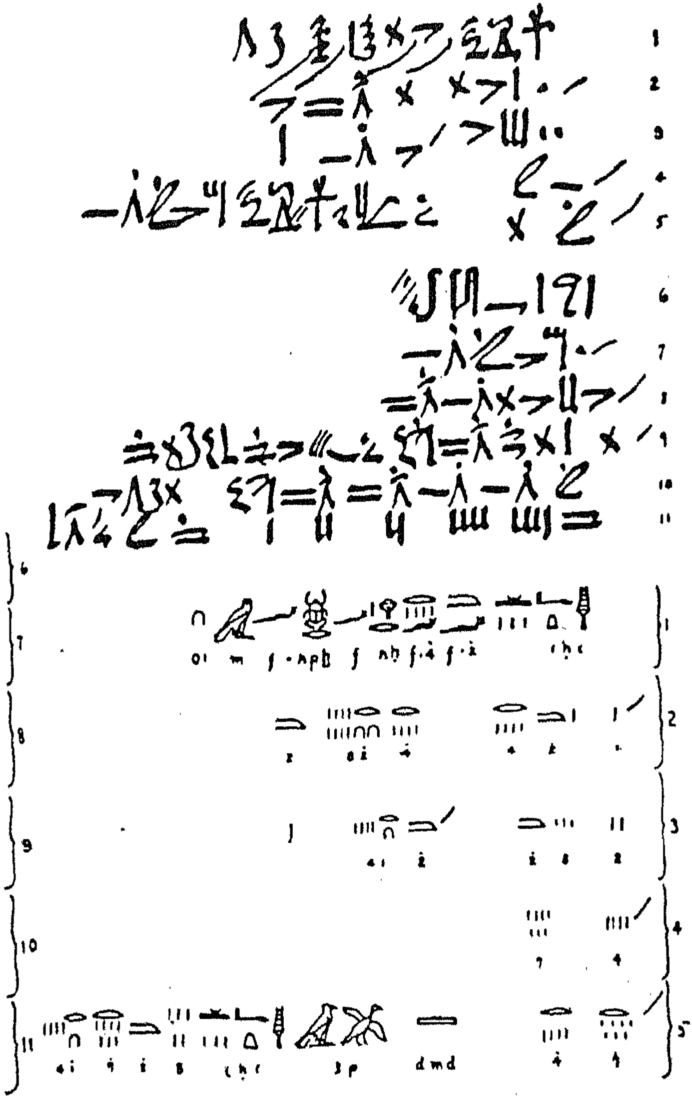
यदि 1/42 में फिर सूत्र (2) लगायें तो

$$\frac{1}{2}=\frac{1}{3}+\frac{1}{7}+\frac{1}{43}+\frac{1}{1806}$$

इत्यादि। सूत्र (2) महावीर द्वारा दिए गए एक व्यापक नियम (जिसका वर्णन आगे किया गया है) का एक विशेष रूप है।

गणितीय इतिहास में एकांश भिन्नों को मिस्रीय भिन्न कहते हैं क्योंकि मिस्र में प्राचीन काल से ही इनका विशेष अध्ययन और विवेचन होता रहा है। वास्तव में वहाँ के गणितज्ञ एकांश भिन्नों पर इतने मुग्ध थे कि अन्य किसी प्रकार की भिन्नों से गणना करना पसंद ही नहीं करते थे। छूट थी तो केवल 2/3 को जिसे विशेष चिह्न से प्रदर्शित किया जाता था। (3/4 के चित्र संकेत के उपयोग का भी कुछ प्रमाण मिला है, लेकिन वह सामान्य उपयोग में न था)।

ईसवी पूर्व 1650 के आसपास मिस्र में एक आहमोस (Ahmos) नामक लेखक या लिपिकार हुआ। उसने किसी प्राचीन गणित-ग्रन्थ के आधार पर एक पुस्तक लिखी जिसे "आहमोस पैपिरस" कहा जाता है। इसी को "रीण्ड पैपिरस" भी कहते हैं, क्योकि ए.एच. रीण्ड (Rhind) ने इसे लुकसोर (Luxor, मिस्र में) स्थान से सन् 1858 में खरीदी थी। आजकल यह ब्रिटिश संग्रहालय में है। इस गणितीय पैपिरस को घसीटा लिपि हाइरॅटिक (hieratic) में लिखा गया था जो दाईं से बाईं ओर पढ़ी जाती थी, और इसमें 87 प्रश्न हैं (चित्र 5.4)।



चित्र 5.4 आहमोस पैपिरस का एक अंश

प्रारम्भ में एक तालिका है जिसमें 2/N का मान एकांश भिन्नों के योग के रूप में दिया गया है, जबकि N का मान 3, 5, 7, 9 ---- से 101 तक विषम संख्याएँ हैं। मिस्री गणितज्ञों के लिए इसका महत्व वही था जो आज के गणनायंत्रों के पहले लघुरिक्थ या लघुगणकीय सारणी का था। इससे उनकी अंकगणित में रुचि और दक्षता का पता चलता है जो इतिहासज्ञों को ही नहीं बल्कि आधुनिक गणितज्ञों को भी आश्चर्य में डाल देती है। यह इसलिए कि तालिका चार हजार साल पुराने काल की है, न कि हाल की।

उदाहरण के लिए पैपिरस सारणी (तालिका) की इन प्रविष्टियों को देखिए:

$$\frac{2}{13}=\frac{1}{8}+\frac{1}{52}+\frac{1}{104}$$

$$\frac{2}{17}=\frac{1}{12}+\frac{1}{51}+\frac{1}{68}$$

$$\frac{2}{43}=\frac{1}{42}+\frac{1}{86}+\frac{1}{129}+\frac{1}{301}$$

$$\frac{2}{61}=\frac{1}{40}+\frac{1}{244}+\frac{1}{488}+\frac{1}{610}$$

$$\frac{2}{91}=\frac{1}{70}+\frac{1}{130}$$

$$\frac{2}{101}=\frac{1}{101}+\frac{1}{202}+\frac{1}{303}+\frac{1}{606}$$

पिछले सौ वर्षों से भी अधिक समय से विद्वानों में वाद-विवाद होता आया है कि तालिका क्यों औरं कैसे बनाई गई थी। फिर भी किसी एकमत पर सहमति नहीं हो पाई। लोगों ने संगणकों (Computers) का भी सहारा लिया लेकिन किसी ऐसे एक सूत्र का पता नहीं लग पाया जिससे तालिका में दिए सभी मान निकल आएँ। तालिका लिखने वाले ने स्वयं उसकी विधि के बारे में कुछ नहीं लिखा। विद्वानों का विश्वास है कि सारी तालिका किसी एक ही नियम से तैयार नहीं की गई थी। हमारे मत से भिन्नों के विभिन्न विधियों से अनेक निरूपण निकाले गए, फिर उनमें से एक को चुन लिया गया। इन पंक्तियों के लेखक ने यह भी पता लगा लिया है कि 2/N की तालिका में जब विषम संख्या N का मान 3n के रूप में है तो निम्नलिखित सूत्र का उपयोग किया गया था

$$\frac{2}{3n} = \frac{1}{2n} + \frac{1}{6n} \qquad (3)$$

जहाँ $n = 3,5,7,9,......33$

इस प्रकार के सारे 16 निरूपण सूत्र (3) से प्राप्त हो जाते हैं जैसे

$$\frac{2}{9} = \frac{1}{6} + \frac{1}{18}$$

$$\frac{2}{39} = \frac{1}{26} + \frac{1}{78}$$

और $\frac{2}{87} = \frac{1}{58} + \frac{1}{174}$ इत्यादि।

अब हम यहाँ एक ऐसी सरल विधि बताते हैं जिसे लगाकर सभी प्रकार की भिन्नों को हमेशा एकांश भिन्नों में बदल सकते हैं। यह विधि दी हुई भिन्न को सबसे बड़ी (किन्तु दी हुई भिन्न से बड़ी नहीं) एकांश भिन्न से कम करने पर निर्भर करती है।

प्रथम उदाहरण

3/13 को एकांश भिन्नों में बदलो। यहाँ पर हर (denominator) 13 को धीरे-धीरे बढ़ाने पर हम पाते हैं कि 3/15 सरल होकर 1/5 आ गया है जो कि 3/13 से कम है। अतः समंजित (adjust) करने से

$$\frac{3}{13} = \frac{1}{5} + \left(\frac{3}{13} - \frac{1}{5}\right) = \frac{1}{5} + \frac{2}{65}$$

अब 2/65 के हर को धीरे-धीरे बढ़ाने पर हमें 2/66 अर्थात् 1/33 मिल जाता है। जो कि 2/65 से कम है। अतः समंजित करने से

$$\frac{3}{13} = \frac{1}{5} + \frac{1}{33} + \left(\frac{2}{65} - \frac{1}{33}\right)$$

$$= \frac{1}{5} + \frac{1}{33} + \frac{1}{2145} \text{ उत्तर}$$

दूसरा उदाहरण

2/13 को एकांश भिन्नों में बदलना।

ऊपर की विधि लगाने से

$$\frac{2}{11} = \frac{2}{14} + \left(\frac{2}{13} - \frac{2}{14}\right)$$

$$= \frac{1}{7} + \frac{1}{91}$$ उत्तर

ध्यान देने योग्य बात यह है कि यह उत्तर आहमोस के उत्तर से मेल नहीं खाता हालाँकि दोनों उत्तर सही हैं। कारण यह है कि सामान्यतया मिस्र की तालिका में सम संख्याओं में अधिक अभिरुचि दिखाकर हरों को चुना गया है।

वास्तव में तालिका में दी हुई सभी भिन्नों के लिये ऊपर की सरल विधि से

$$\frac{2}{2n-1} = \frac{2}{2n} + \left(\frac{2}{2n-1} - \frac{2}{2n}\right)$$

$$= \frac{1}{n} + \frac{1}{n(2n-1)} \qquad (4)$$

होगा, जहाँ n= 2,3,4, ------- 51

लेकिन तालिका की बहुत ही थोड़ी सी प्रविष्टियाँ इस सूत्र (4) से प्राप्त होती हैं। जैसे

$$\frac{2}{11} = \frac{1}{6} + \frac{1}{66}$$

तथा $\frac{2}{23} = \frac{1}{12} + \frac{1}{276}$

एक और विशेष ध्यान देने की बात यह है कि किसी भी भिन्न का एकांश भिन्नों में निरूपण अद्वितीय (Unique) नहीं है। अर्थात् बहुत से उत्तर हो सकते हैं। जैसे

$$\frac{2}{43} = \frac{1}{22} + \frac{1}{946}$$

या $\frac{2}{43} = \frac{1}{24} + \frac{1}{258} + \frac{1}{1032}$

या $\frac{2}{43} = \frac{1}{30} + \frac{1}{86} + \frac{1}{645}$

या $\frac{2}{43} = \frac{1}{31} + \frac{1}{86} + \frac{1}{645} + \frac{1}{930}$

इत्यादि। लेकिन तालिका में

$$\frac{2}{43} = \frac{1}{42} + \frac{1}{86} + \frac{1}{129} + \frac{1}{301}$$

दिया गया है। यदि निरूपण चार पदों तक ही सीमित रहे और हरों के मान भी 1000 से ज्यादा न हों तो संगणक की मदद से पता चला है कि भिन्न $2/(2n-1)$ के विभिन्न निरूपणों की संख्या n के कुछ मानों (जैसे $n = 15$, या $n=21$) के लिए एक हजार से भी अधिक है! केवल अंतिम प्रविष्टि (अर्थात् 2/101) के लिए निर्धारित सीमाओं में केवल एक ही निरूपण का पता चला, और बेशक यह वही निकला जो कि तालिका में था। किसी भिन्न को एकांश भिन्नों में बदलने की जो सरल विधि ऊपर दी गई है, वह पश्चिमी इतिहासकारों के अनुसार फीबोनाट्ची (Fibonacci) द्वारा 13वीं शताब्दी के प्रारम्भ में लिखी गई पुस्तक लीबेर अबेसी (Liber Abaci) में उपलब्ध है। लेकिन उससे चार शताब्दी पहले भारत में महावीराचार्य (9वीं सदी) ने अपने गणितसार संग्रह में जो नियम दिया है, वह बहुत ही सुन्दर और व्यापक है, तथा उससे ऊपर दिया गया नियम (या विधि) एक विशेष स्थिति में निकल आता है।

महावीराचार्य का विलक्षण व्यापक नियम

दिगम्बर जैन महावीराचार्य का नियम भारतीय गणित का एक बहुमूल्य मोती है जिस पर हम कुछ विस्तार से चर्चा करेंगे। मूल नियम (गणितसार संग्रह III, 80) का पाठ इस प्रकार है – सेष्टो हारो भक्तः स्वांशेन निरग्रमादिमांशहरः।
तद्युतिहाराप्तेष्टः शेषोऽस्मादित्थमितरेषाम् ।।

अर्थात् "(दी हुई भिन्न के) हर में किसी ऐसी (कल्पित) संख्या को जोड़ दो कि योगफल को अपने अंश से भाग देने पर शेष न बचे। (इस प्रकार) भाग देने से प्राप्त लब्धि पहले भिन्न की हर है; और इस हर तथा दी हुई भिन्न के हर द्वारा भाग की हुई कल्पित संख्या, शेष है (अर्थात् अन्य भिन्न है) इस शेष पर वही क्रिया करने पर अन्य भिन्नों के हर प्राप्त होंगे।"



चित्र 5.5 दिगम्बर जैन मुनि का आश्रम

इस नियम का स्पष्टीकरण इस प्रकार है। माना कि दी हुई भिन्न p/q है। (यहाँ $q>p$) जिसे हम एकांश भिन्नों में निरूपित करना चाहते हैं। पहले हम इसे दो भिन्नों में निरूपित करेंगे जिनमें से प्रथम भिन्न एकांश होगी। (दूसरी भिन्न को यहाँ शेष कहा गया है, चाहे वह एकांश हो या न हो)। अब एक इष्ट राशि x की कल्पना इस प्रकार करेंगे कि $(q+x)$ में p का भाग पूरा-पूरा चला जाये। यानी $(q+x)/p$ एक पूर्णांक r हो जाये। महावीराचार्य के नियम के अनुसार–

$$\frac{p}{q} = \frac{1}{r} + \frac{x}{rq} \qquad (5)$$

जिसमें 1/r पहली इष्ट या वांछित (desired) एकांश भिन्न है, और x/rq शेष हैं, जिस पर फिर वैसी ही क्रिया कर सकते हैं यदि जरूरत पड़े तो। उदाहरण के लिये हम 2/13 लेते हैं। यहाँ हर 13 है। चूंकि (13+1) में अंश 2 का भाग पूरा-पूरा चला जाता है, इसलिये हम इष्ट 1 ले सकते हैं। अर्थात् माना कि x = 1,

तब r = (13+1)/2 = 7

अतः नियम (5) से

$$\frac{2}{13} = \frac{1}{7} + \frac{1}{91}$$

यह उत्तर हम पहले भी प्राप्त कर चुके हैं (दूसरा उदाहरण देखिये)। लेकिन चूंकि (13 + 3) में भी 2 का भाग पूरा-पूरा चला जाता है, इसलिये हम 3 को भी इष्ट संख्या x ले सकते हैं। तब r का मान (13 + 3)/2, यानी 8 होगा। अतः नियम (5) से

$$\frac{2}{13} = \frac{1}{8} + \frac{3}{104} \qquad (6)$$

ध्यान से देखने पर हम (बिना कोई नियम लगाये) पाते हैं कि

$$\frac{3}{104} = \frac{2}{104} + \frac{1}{104} = \frac{1}{52} + \frac{1}{104}$$

अतः

$$\frac{2}{13} = \frac{1}{8} + \frac{1}{52} + \frac{1}{104}$$

और यही उत्तर आहमोस ने दिया है। वैसे यदि 3/104 के लिए यदि इष्ट x =1 लें, तो महावीर के नियम (5) से (चूंकि r का मान 105/3 =35 है)

$$\frac{3}{104} = \frac{1}{35} + \frac{1}{35 \times 104}$$

इसको (6) में रखने पर

$$\frac{2}{13}=\frac{1}{8}+\frac{1}{35}+\frac{1}{3640}$$

महावीराचार्य के नियम से दो बातें स्पष्ट हैं। पहली यह कि हर q को धीरे-धीरे बढ़ाने से हमें सबसे छोटा इष्ट, x प्राप्त हो जायेगा और इस प्रकार हमें वही नियम मिल जायेगा जिसे लगभग 350 वर्ष बाद यूरोप के फीबोनाट्ची ने दिया। दूसरी बात यह कि अलग अलग इष्ट लेने से अनेकों (जितने चाहें उतने) उत्तर प्राप्त कर सकते हैं। इस प्रकार महावीर का नियम बहुत व्यापक है। पिछले पृष्ठों पर दिये गए सरल नियम (2) तथा (3) भी सूत्र (5) से प्राप्त किये जा सकते हैं। *गणितसारसंग्रह* में कुछ अन्य नियम भी हैं जिनके आविष्कार का श्रेय महावीराचार्य को है। नारायण पंडित रचित *गणित कौमुदी* (ई. 1356) के अतिरिक्त एकांश भिन्नों का इस प्रकार का विवेचन अन्य ग्रन्थों में नहीं मिलता है। इसका मुख्य कारण है उनकी व्यावहारिक उपयोगिता की कमी।

प्राचीन भारत में भिन्न

मिस्र की तरह भारतवर्ष में भी एकांश तथा सामान्य भिन्नें बहुत प्राचीन काल से ज्ञात थीं। ऋग्वेद के *पुरुषसूक्त* (x,90,3-4) में "पाद" और "त्रिपाद" शब्द आये हैं जिनका अर्थ 1/4 और 3/4 लिया गया है। *मैत्रायणी संहिता* (3.7,7) के अनुसार 1/4 को पाद, 1/8 को शफ, 1/12 को कुष्ठ तथा 1/16 को कला कहा जाता था। ऋग्वेद (VIII.47) में भी कला और शफ शब्द आये हैं।

संख्या और भिन्न के संदर्भ में "कला" शब्द बहुत रोचक और अनेक अर्थों वाला है। भूतसंख्या के रूप में "कला" का अर्थ 16 होता है। चन्द्रमा के घटते-बढ़ते रूप को भी कला कहते हैं, और इस प्रकार चन्द्रमा में भी 16 कलाएँ मानी गई हैं। कला का एक व्यापक अर्थ "भाग" (Part) होता है। चाप के कोणीय माप के संबंध में एक कला (minute) 1/60 अंश के बराबर होती है, जबकि सारे चक्र में 360 अंश माने जाते हैं। अधिक व्यापक अर्थ में कला का मतलब किसी विशेष प्रकार का ज्ञान या किसी विशेष क्षेत्र में निपुणता है, जैसे शिल्पकला, संगीत कला आदि। भारतीय परम्परा में 64 या कभी-कभी 72 कलाएँ

प्रसिद्ध हैं।

एक प्राचीन चीनी ग्रन्थ *शियाहाऊ यांग सुआन चिंग* (Hsiahou Yang Suanching) अर्थात् शियाहाऊ यांग की अंकगणित की पुस्तिका में भिन्नों के रोचक नाम दिये हैं। जैसे 1/2 को "मृतार्ध" (यानी पक्का आधा; cf. 'dead sure' पूर्णतया निश्चित), 1/3 को 'कनिष्ठ आधा', 2/3 को 'ज्येष्ठ आधा' तथा 1/4 को 'दुर्बल आधा' कहा गया है। वान ही (Van Hee) की राय में इन संज्ञाओं पर भारत का प्रभाव है। लेकिन इसकी प्रामाणिक पुष्टि देना संभव नहीं है।

वैदिक काल से ही भारत के निवासी भिन्नों के अंकगणित में निपुण थे। *वेदांग-ज्योतिष* की अभिगणनाओं में तो भिन्नों का परिकर्म बड़ी सरलता से कर लिया जाता था।

शुल्व सूत्रों में भिन्नों का प्रयोग प्रचुरता से हुआ है। एकांश भिन्नों में विशेष रुचि प्रदर्शित की गई है। उदाहरण के लिये *बौधायन, आपस्तम्ब* और *कात्यायन* तीनों शुल्ब सूत्रों में वर्ग के कर्ण की लम्बाई को शीघ्रता से निकालने का एक अच्छा नियम है। यदि वर्ग की भुजा (side) की लम्बाई s हो तो नियम के अनुसार आसन्न मान के लिये सूत्र इस प्रकार दिया गया है –

$$\text{कर्ण} = s + \frac{s}{3} + \frac{s}{3 \times 4} - \frac{s}{3 \times 4 \times 34}$$

चूंकि कर्ण का सही मान $\sqrt{2}s$ होता है, अतः अपरिमेय संख्या $\sqrt{2}$ का एक परिमेय आसन्न मान, शुल्व नियम से,

$$\sqrt{2} = 1 + \frac{1}{3} + \frac{1}{12} - \frac{1}{408} = 577/408$$

होगा। यह चार दशमलव स्थानों तक सही मान देने में समर्थ है।

प्राचीन बॅबीलोन में संख्याओं को लिखने की षाष्ठिक (sexagesimal) प्रणाली का ज्यादा प्रयोग होता था। इसलिये वे लोग भिन्नों को भी इसी पद्धति में लिखने के अभ्यस्त थे। उदाहरण के लिये $\sqrt{2}$ के आसन्न मान को प्राप्त करने में वे जिन नियमों का इस्तेमाल करते थे ,उनमें से एक (जो शायद सबसे बढ़िया था) इस प्रकार लिखा जा सकता है–

$$\sqrt{2} = 1 + \frac{24}{60} + \frac{51}{60^2} + \frac{10}{60^3} = 30547/21600$$

ऐसा माना जाता है कि मेसोपोटामिया से ही भिन्नों के व्यक्त करने की यह षाष्ठिक पद्धति सारे विश्व में फैली थी।

ज्योतिष में इस प्रणाली का प्रचलन लगभग प्रारम्भ से ही है। उदाहरण के लिये सायन (tropical) वर्ष का मान 365, 14, 31, 55, 12 दिन,

इस प्रकार लिखा जाता है । इसका मतलब है–

$$365 + \frac{14}{60} + \frac{31}{60^2} + \frac{55}{60^3} + \frac{12}{60^4} \text{ दिन}$$

आजकल षाष्ठिक प्रणाली का उपयोग समय और कोण के छोटे-छोटे भाग व्यक्त करने में होता है। एक घंटे में 60 मिनट (minute) और एक मिनट में 60 सेकेन्ड (second) के विभाजन की बात सभी जानते हैं। अतः 3 घंटा 17 मिनट और 53 सेकेन्ड का मान घंटों में $3 + \frac{17}{60} + \frac{53}{60^2}$ होगा ।

कोण नापने की इकाइयों की संज्ञाएँ एक प्रथा के अनुसार वही हैं जो प्राचीन काल में वृत्त की चाप को मापने में प्रयोग की जाती थीं। (अध्याय VIII देखिये), लेकिन "राशि" (=30 अंश) को सामान्यतया त्रिकोणमिति की पुस्तकों में स्थान नहीं दिया जाता है। बाकी अन्य नाम अंश (=60 कला), कला (=60 विकला), विकला (=60 तत्परा) इत्यादि षाष्ठिक प्रणाली के अनुसार चलते हैं। उदाहरण के लिये टॉलमी (ईसवी दूसरी शताब्दी) ने चन्द्र की औसत दैनिक गति लगभग $13^0 10' 34'' 59'''$ दी है, अर्थात् 13 अंश, 10 मिनट, 34 सेकेन्ड तथा 59 तत्परा। षाष्ठिक भिन्नों का प्रयोग करके इसका मान केवल अंशों में इस प्रकार लिखा जा सकता है।

$$\text{चन्द्रगति} = 13 + \frac{10}{60} + \frac{34}{60^2} + \frac{59}{60^3} \text{ अंश/दिन}$$

स्थूल रूप से चन्द्रमा प्रतिदिन 13^0 तथा सूर्य 1^0 पश्चिम से पूर्व की ओर (वास्तविक) गति करते हैं। इसलिये चन्द्रमा प्रतिदिन $24 \times (13-1) \times 60/360 = 48$,

अर्थात् 48 मिनट देर से उगता है (यहाँ कोणीय 360^0 को समय के 24 घंटों में बदल दिया गया है।

आधुनिक समय में भिन्नों का एक रोचक उपयोग स्वर्ण की शुद्धता प्रदर्शित करने में किया जाता है। पूर्णतया शुद्ध स्वर्ण 24 कैरेट (carat) का माना जाता है। 23 कैरेट सोने का मतलब है कि उसमे 23/24 भाग सोना ही शुद्ध है।

अध्याय 6

सर्वव्यापी त्रैराशिक

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्यस्विद् धनम् ।।

यह प्रथम उपनिषद् का प्रथम श्लोक है। उपनिषद् का नाम श्लोक के प्रारंभिक शब्दों पर ईशावास्योपनिषद् है। यह उपनिषद् शुक्लयजुर्वेद् (वाजसनेयी संहिता) का 40वां अध्याय है। मंत्र का अर्थ इस प्रकार है।

"इस संपूर्ण विश्व में चराचर जो कुछ है, वह सब ईश्वर से व्याप्त है। उसका भोग त्याग की भावना से करो और पराये धन की अभिलाषा मत करो।"

संक्षेप में यहाँ सनातन धर्म की मुख्य (सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दोनों) बातों का प्रतिपादन कर दिया गया है। वास्तव में इस श्लोक में हिन्दू धर्म का सार छिपा है, इसीलिये महात्मा गांधी ने कहा था कि--

"यदि प्रथम उपनिषद् का प्रथम मंत्र हिन्दुओं को याद रहता है तो भी हिन्दू धर्म सदा जीवित रहेगा, चाहे सारे धर्म ग्रन्थ लुप्त हो जायें।"

यह तो रही प्रत्यक्ष भौतिक जगत् की बात, अब सुनिये गणित-जगत की बात। प्रसिद्ध भास्कराचार्य ने लीलावती के छाया व्यवहार में लिखा है-

"त्रैराशिकेनैव यदेतदुक्तं व्याप्तं स्वभेदैर्हरिणेव विश्वम् ।"

अर्थात्

"जिस प्रकार यह विश्व भगवान विष्णु के विभिन्न रूपों से व्याप्त है, उसी प्रकार संपूर्ण गणित त्रैराशिक और उसके विभिन्न भेदों से व्याप्त है।"

इसी को कुछ और स्पष्ट करते हुए, आचार्य आगे कहते हैं –

"बीजगणित में अथवा यहाँ अंकगणित में गुणा तथा भाग की विधियों से जो कुछ गणित किया जाता है, वह बुद्धिमानों के लिये त्रैराशिक ही है। विद्वानों ने उसी *त्रैराशिक* के अनेक भेदों को सरल बनाकर *विभिन्न* नामों से गणित के नियमों की जो रचना की है, वह केवल कम समझदार लोगों को आसानी से समझाने के लिये है।"

कुछ टीकाकारों द्वारा स्वीकृत *लीलावती* पाठ में एक जगह तो यहाँ तक कह दिया गया है कि "अस्ति त्रैराशिकं पाटी बीजं च विमलामतिः।"

अर्थात् "त्रैराशिक ही पाटीगणित (arithmatic) है और निर्मल बुद्धि ही बीजगणित (algebra)"।

गणित में ही नहीं, गणित ज्योतिष में भी त्रैराशिक नियम का बहुतायत से प्रयोग होता है। इसीलिये आचार्य नीलकंठ अपने *आर्यभटीय-भाष्य* में कहते हैं कि

"भुजा कोटिकर्णन्यायेन त्रैराशिकन्यायेन
चोभाभ्यां सकलं ग्रहगणितं व्याप्तम् ।"

अर्थात् संपूर्ण ग्रहगणित, त्रैराशिक नियम और भुजाकोटि कर्ण न्याय (यानी पैथागोरस प्रमेय) से व्याप्त है।

इस प्रकार प्राचीन गणित में त्रैराशिक का महत्व सभी ने स्वीकार किया है। वास्तव में उसकी सरलता तथा विभिन्न प्रकार के प्रश्नों में उसके प्रयोग की व्यापकता के कारण ही भारतीय गणितज्ञों ने इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। नियम इतना सुगम है कि अपढ़ व्यक्ति भी प्रश्नों के हल करने में इसका बेधड़क प्रयोग कर सकते हैं। भारत में तो इसका प्रचार आम जनता में हजारों साल से है। इसीलिये आचार्य वराहमिहिर अपनी *पंचसिद्धान्तिका* (IV, 37) में लिखते हैं कि –

"यदि सूर्य एक वर्ष में पृथ्वी की परिक्रमा करता है तो इष्ट दिनों में कितनी परिक्रमाएँ

करेगा? इस प्रकार की सूर्य संबंधी गणना को क्या अज्ञ व्यक्ति खड़िया से रेखाएँ खींचकर नहीं कर सकता"।

क्या वास्तव में एक अपढ़ व्यक्ति त्रैराशिक जानता है, क्योंकि उसने तो कभी कुछ पढ़ा-लिखा ही नहीं। उसने इस नियम को विद्यालय या पुस्तकों में तो नहीं पढ़ा पर वह उसे (बिना नाम जाने) समझता है। यदि एक मीटर कपड़े का दाम 6 रुपये हो तो ढाई मीटर का कितना दाम होगा, यह अपढ़ व्यक्ति भी जानता है, हालांकि उसके निकालने का ढंग त्रैराशिक का एक सरल और व्यावहारिक रूप है।

क्या वास्तव में त्रैराशिक बहुत आसान होता है ? जी हाँ ! कैसे ? देखिये ऐसे –

त्रैराशिक का अर्थ है "तीन राशियों वाला नियम"। यह तीन राशियाँ हैं प्रमाण (=प्र.), फल (=फ.) और इच्छा (=इ.)। इनमें प्र. और इ. एक ही जाति के होते हैं। अब किसी भी त्रैराशिक प्रश्न का स्वरूप इस प्रकार होता है –

यदि "प्र" में "फ" मिलता है, तो "इ" में क्या मिलेगा ? उत्तर, यानी इच्छाफल होगा

$$\frac{इ \times फ}{प्र} \qquad (1)$$

इसी को एक प्राचीन श्लोक में इस प्रकार कहा गया है –

इच्छां फलेन संहत्य प्रमाणेन विभाजयेत् ।

इच्छाफलं भवेत् लब्धं एवं त्रैराशिकं मतम् ।।

अर्थात् "इच्छा को फल से गुणा करके प्रमाण द्वारा भाग करो। भागफल ही इच्छाफल होता है। इसी को त्रैराशिक नियम कहते हैं।"

जैसे, यदि 350 रुपये में एक क्विंटल गेहूं मिलता है, तो 50 रुपये में कितना मिलेगा ?

यहाँ प्रमाण प्र = 350 रुपये

फल, फ =100 किलो

और इच्छा, इ = 50 रुपये ।

अतः सूत्र (1) से

$$इच्छाफल = \frac{50 \times 100}{350} = 14\frac{2}{7} \text{ किलो।}$$

अर्थात् 50 रुपये में $14\frac{2}{7}$ किलो गेहूं मिलेगा।

नोट - विद्यार्थीगण (1) को इस प्रकार भी निकाल सकते हैं।
यदि प्र में फ मिलता है,
तो 1 में फ/प्र मिलेगा,
इ में मिलेगा = (फ/प्र) x इ।

हमारे सभी प्राचीन गणित के ग्रन्थों में त्रैराशिक पर अच्छे-अच्छे उदाहरण हैं। उनके कुछ नमूने अब हम प्रस्तुत करेंगे।

सबसे पहले हम शारदा लिपि में लिखी *बक्षालीगणित* पोथी लेते हैं जिसके समय के बारे में मतभेद हैं। कुछ विद्वान इसे ई. चौथी शताब्दी का ग्रन्थ मानते हैं। एक जापानी शोधकर्ता तकाओ हयाशी, जिसे इस पोथी के अध्ययन पर ब्राउन विश्वविद्यालय (अमरीका) से डॉक्टरेट की उपाधि मिली है, ने इसका समय 7वीं सदी निर्धारित किया है।

उदाहरण (1) : पृथ्वी की सतह से ब्रह्मलोक की ऊँचाई 14 करोड़, 65 लाख योजन है। वहाँ से छोड़ा हुआ एक वस्त्र प्रतिदिन 293 योजन नीचे की ओर गिरता है। हे गणतोत्तम बताओ कि वह कितने दिनों में भूतल पर पहुंचेगा।

यहाँ प्रमाण = 293 योजन

फल = 1 दिन

इच्छा = 14, 6500,000 योजन

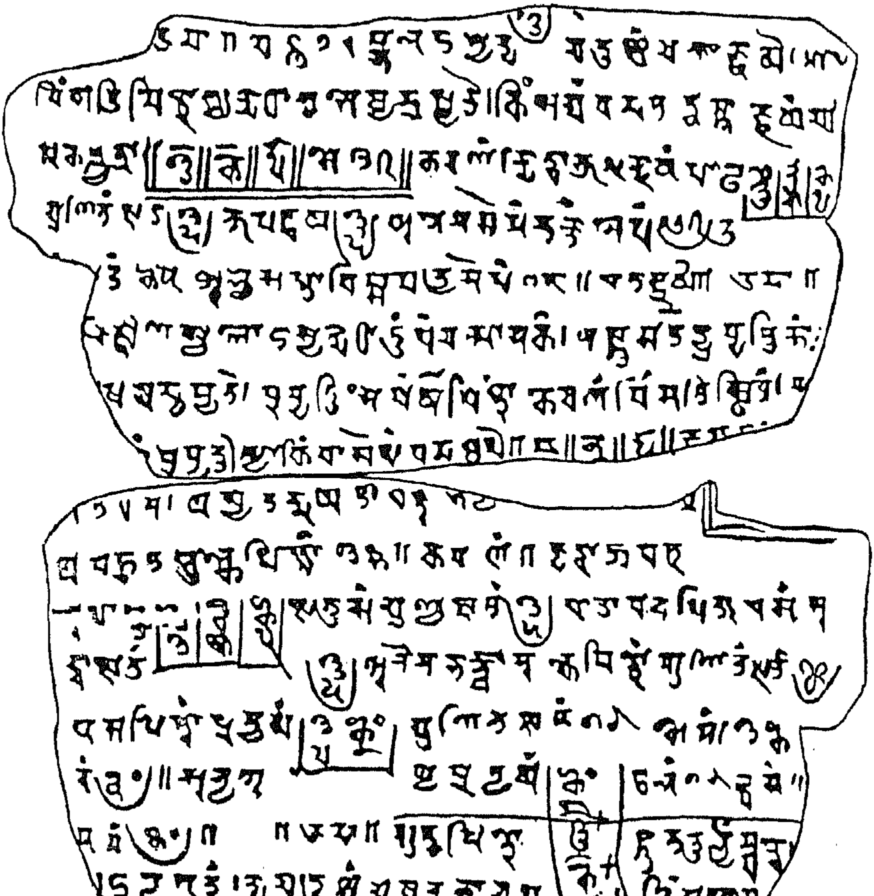
इसे सरल भाषा में हम कहते हैं कि 293 योजन के लिए 1 दिन लगता है तो 14,65,00,000 योजन के लिए कितने दिन लगेंगे।

उत्तर = $\frac{1x146500000}{293}$ =500000 दिन

= 1388 वर्ष, 10 मास, 20 दिन,

जहां 1 वर्ष = 12 मास = 12x30 दिन लिया गया है।

उदाहरण (2) : आधे अंगुल भुजा वाले एक वर्ग चर्म पर 900 केश हैं। तो बताओ कि 12 हाथ भुजा वाले वर्गचर्म में कितने केश होंगे?



चित्र 6.1 बक्षालीपोथी से कुछ अंश

यहाँ प्रमाण = $\frac{1}{2} \times \frac{1}{2} = \frac{1}{4}$ वर्ग अंगुल

फल = 900 केश

इच्छा = (12x24) x (12x24)

= 82944 वर्ग अंगुल।

$\therefore$ इच्छाफल = $\frac{900 \times 82944}{(1/4)}$ = 29,85,98,400 केश

आर्यभट प्रथम (जन्म 476 ई.) की *आर्यभटीय* पर उनके अनुयायी भास्कर प्रथम ने ई. सन् 629 में एक बड़ी अच्छी टीका लिखी है। उसमें त्रैराशिक पर अनेक उदाहरण हैं। उनमें से एक इस प्रकार है:

उदाहरण (3): एक नाग 20 हाथ लम्बा है। वह बिल में प्रवेश करते समय प्रति मुहूर्त 1/2 अंगुल आगे जाता है तो 1/5 अंगुल पीछे आ जाता है। कितने दिनों में वह पूर्णतया बिल में चला जायेगा ?

यहाँ नाग की आगे बढ़ने की प्रभावी (effective) गति

$= \frac{1}{2} - \frac{1}{5} = \frac{3}{10}$ अंगुल प्रति मुहूर्त है।

तो 20 हस्त या 480 अंगुल लम्बे अपने शरीर को पूर्णतया (ताकि बाद में पीछे हटने की संभावना भी न रहे) बिल में घुस जाने का समय = $\frac{480}{(3/10)}$ मुहूर्त = 1600 मुहूर्त = 53 दिन और 10 मुहूर्त

क्योंकि एक दिन (रात्रि मिलाकर) में 30 मुहूर्त होते हैं।

ई० सन् लगभग 700 और 800 के बीच में सक्रिय आचार्य श्रीधर प्राचीन भारत के गणितज्ञों में प्रमुख थे। उनकी एक विशेषता यह थी कि उन्होंने गणित विषय पर स्वतंत्र रूप (अर्थात्, ज्योतिष के अंतर्गत नहीं) में पुस्तकें लिखी हैं। इनमें *पाटीगणित* प्रमुख है। दुर्भाग्य से इसकी अभी तक कोई संपूर्ण पाण्डुलिपि प्रकाश में नहीं आई। जम्मू स्थित

रघुनाथ मंदिर के पुस्तकालय से प्राप्त एक अधूरी हस्तलिपि के आधार पर सम्पादित *पाटीगणित* पुस्तक लखनऊ विश्वविद्यालय ने प्रकाशित की है। इसमें से निम्नलिखित उदाहरण देखिये-

उदाहरण (4) : यदि $1\frac{1}{3}$ पल काली मिर्च $1\frac{1}{4}$ पण में प्राप्त होती है, तो $9\frac{2}{3}$ पण में कितनी मिलेगी ? शीघ्र बताओ।

उत्तर होगा, $\frac{(4/3) \times 29/3)}{(5/4)} = 10\frac{14}{45}$ पल।

उदाहरण (5) : एक पंगु व्यक्ति 1/3 दिन में 1/8 योजन चलता है। बताओ कि उसे 100 योजन दूरी चलने में कितना समय लगेगा ?

इच्छाफल $= \frac{(1/3) \times (100)}{(1/8)} = \frac{800}{3}$ दिन = 8 महीने और $26\frac{2}{3}$ दिन।

दक्षिण भारत के राष्ट्रकूट वंश के चक्रिका-भंजन नरेश अमोघवर्ष नृपतुंग का शासनकाल ई. 9वीं शताब्दी था। उस समय वहाँ एक दिगम्बर जैन गणितज्ञ महावीराचार्य कार्यरत थे। उनके रचित *गणितसार संग्रह* का उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। "संग्रह" होने के कारण यह ग्रंथ ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण है। इसमें एक पूरा अध्याय "त्रैराशिक व्यवहार" पर है। एक विचित्र उदाहरण देखिये।

उदाहरण (6) : एक कीड़ा 1/8 दिन में 1/4 अंगुल चलता है। मेरु पर्वत की तली से उसके शिखर तक पहुँचने में उसे कितने दिन लगेंगे ?

इस प्रश्न को हल करने के लिये प्राचीन काल में प्रचलित लम्बाई या दूरी की इकाइयों को जानना जरूरी है। सामान्यतया वे इस प्रकार थीं।

1 योजन = 4 क्रोश

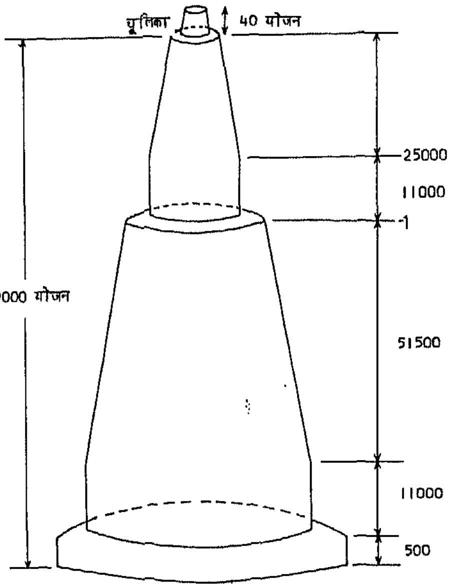
1 क्रोश = 2000 धनुष (या दंड)

1 धनुष = 4 हस्त

1 हस्त = 24 अंगुल।

इस प्रकार एक योजन में 7,68,000 अंगुल होंगे।

मेरु पर्वत (चित्र 6.2) की ऊँचाई कितनी है, यह भी एक समस्या उठती है। इस विषय



चित्र 6.2 मेरु पर्वत

में मतभेद हैं। साधारणतया यह 84000 योजन या 99000 योजन ली जाती हैं। *गणितसार संग्रह* के सम्पादकों व अनुवादकों ने 99000 योजन का उल्लेख किया है। इस मान को लेने पर मेरु पर्वत की ऊँचाई होगी

$99000 \times 76800 = 76032 \times 10^6$ अंगुल

अतः बेचारे कीड़े को शिखर तक पहुंचने में

$$\frac{(1/8) \times 76032 \times 10^6}{(1/4)}$$

$= 38016 \times 10^6$ दिन

= (38016/360) x 10^6 वर्ष

= 1,06,00,000 वर्ष लग जायेंगे।

वास्तव में कीड़ा कुछ पहले पहुंचने की आशा कर सकता है क्योंकि एक सौर वर्ष में 365 से भी अधिक दिन होते है। फिर मेरु पर्वत की ऊँचाई भी तो हमें ठीक-ठीक नहीं मालूम। यदि प्रलयादि नहीं हुई, तो कीड़े को लाखों वर्ष तक अथक चलने के बाद स्वयं ही ऊँचाई मालूम हो जायेगी।

प्राचीन भारत के गणकचक्र चूड़ामणि ब्रह्मगुप्त ने ई. 628 में *ब्राह्मस्फुट-सिद्धांत* की रचना 30 वर्ष की आयु में की। चापवंशीय राजा व्याघ्रमुख के शासन काल में लिखा गया यह ग्रंथ कलेवर में बहुत बड़ा है। उसकी भाषा संक्षिप्त है और शैली क्लिष्ट। उसके एक गणितीय अध्याय को तो आज तक कोई विद्वान समझ नहीं पाया है। ई. 9वीं शताब्दी में कन्नौज निवासी पृथूदक चतुर्वेदी ने उस पर जो टीका लिखी, वह भी प्राचीन गणित सामग्री से भरपूर है।

त्रैराशिक पर पृथूदक का उदाहरण बड़ी सरल संस्कृत में इस प्रकार है –

उदाहरण (7) :

शतमष्टोत्तरं धेनोर्यो ददाति दिनैस्त्रिभिः।

मास युक्तेन सोऽब्देन कियतीगोः प्रयच्छति।।

अर्थात् "जो व्यक्ति तीन दिन में 108 गायें देता है, वह एक वर्ष और एक मास में कितनी गायें देगा"। (उत्तर - 13x30 दिनों में 14040 गाय)

भास्कराचार्य या भास्कर द्वितीय (12वीं सदी) रचित *लीलावती* के उदाहरण पहले ही दिये जा चुके हैं (अध्याय 1 देखिये) ।

मिश्रानुपात

त्रैराशिक नियम एक अनुपात का सिद्धांत है। प्राचीन भारतीय गणित में मिश्रानुपात विषय को, प्रयुक्त राशियों की संख्या के अनुसार पंचराशिक, सप्तराशिक, नवराशिक इत्यादि अलग-अलग संज्ञाएँ दी गयी हैं। कभी-कभी त्रैराशिक, पंचराशिक इत्यादि नियमों को "बहुराशिक"

संज्ञक सामान्य विषय के अंतर्गत गिना जाता है।

लेकिन प्रायः देखने में आता है कि त्रैराशिक के अंतर्गत ही अन्य बहुराशिकों को मान लिया जाता है क्योंकि यह सभी अनुपात के सिद्धान्त की सहायता से सिद्ध हो जाते हैं। भास्कर प्रथम के अनुसार वास्तव में अन्य बहुराशिकों को हम त्रैराशिक के समूह के रूप में समझ सकते हैं क्योंकि पंचराशिक में दो त्रैराशिक मिले हैं, सप्तराशिक में तीन त्रैराशिक मिले हैं, इत्यादि। स्पष्टीकरण के लिये हम एक छोटा सा उदाहरण लेते हैं।

उदाहरण (8) : यदि 30 मीटर लम्बे और 20 मीटर चौड़े भूखण्ड की कीमत 10000 रुपये हो, तो 90 मी. लम्बे तथा 40 मी. चौड़े भूखण्ड की कीमत क्या होगी ?

इस प्रश्न में पाँच राशियाँ हैं और इसे पंचराशिक से सीधे हल किया जा सकता है। लेकिन हम इसे दो बार त्रैराशिक का नियम लगाकर हल करेंगे।

30 मीटर लम्बे और 20 मीटर चौड़े भूखण्ड का दाम 1000 रु है इसलिये 90 मीटर लम्बे और 20 मीटर चौड़े भूखण्ड का दाम त्रैराशिक से होगा –

$$\frac{1000 \times 90}{30} = 30000 \text{ रु.}$$

अब 90 मी. लम्बे और 20 मी. चौड़े भूखण्ड का दाम 30000 रु. है तो 90 मी. लम्बे तथा 40 मी. चौड़े भूखण्ड का दाम दूसरे त्रैराशिक से होगा –

$$\frac{30000 \times 40}{20} = 60000 \text{ रु. (उत्तर)}$$

यदि सीधे पंचराशिक को लगायें तो, भूखण्ड का दाम होगा –

$$\frac{10000 \times 90 \times 40}{30 \times 20} = 60000 \text{रु.।}$$

जो कि वही और सही उत्तर है। इस प्रकार पंचराशिक को दो त्रैराशिक के बराबर समझा जा सकता है।

एक बात और ध्यान देने की है। यदि क्षेत्रफल का विचार किया जाये तो भूखण्ड का दाम, एक ही त्रैराशिक से (ऊपर के उदाहरण (2) से तुलना कीजिए)

$$= \frac{1000 \times 3600}{600} = 60000 \text{ रु. ।}$$

इस तरह पंचराशिक, सप्तराशिक इत्यादि को त्रैराशिक के ही अंतर्गत मानना ठीक ही है।

अब हम प्राचीन ग्रन्थों से इन बहुराशिकों के उदाहरणों के नमूने देते हैं।

भास्कर प्रथम ने *आर्यभटीय-भाष्य* में पंचराशिक पर साधारण ब्याज के अनेक उद्देशक दिये हैं जिनमें एक इस प्रकार है।

उदाहरण (9): 100 रुपये में एक मास में 5 रुपये की वृद्धि होती है। यदि तुम आर्यभट द्वारा सिखाया गणित जानते हो तो बताओ कि 20 रुपये में 6 मास में कितनी वृद्धि होगी।

यहाँ प्रमाण पक्ष है 100x1 (=प्र.),

और इच्छा पक्ष है 20x6 (=इ.), इसलिये उत्तर होगा,

$$=\frac{(20\times6)\times5}{(100\times1)}=6 \text{ रुपये}$$

सप्तराशिक पर उनका उद्देशक रोचक है –

उदाहरण (10): यदि 9 हस्त लम्बे, 7 हस्त ऊँचे और 30 हस्त (धड़ की) परिधि वाले हाथी के लिये प्रतिदिन 9 कुडव भोजन चाहिये, तो बताओ कि 7 हस्त लम्बे, 5 हस्त ऊँचे और 28 हस्त परिधि वाले हाथी के लिये कितना भोजन चाहिये।

यहाँ प्रमाण पक्ष, प्र= 9x7x30

और इच्छा पक्ष इ=7x5x28

अतः सप्तराशिक नियम से भोजन की मात्रा

$$\frac{\text{इ}\times\text{फ}}{\text{प्र}}=\frac{(7\times5\times28)\times9}{(9\times7\times30)}=4\frac{2}{3} \text{ कुडव।}$$

नवराशिक का एक उदाहरण श्रीधर ने इस प्रकार दिया है –

उदाहरण (11): यदि क्रमशः 9, 5 और 1 इकाई लम्बाई, चौड़ाई और मोटाई वाले एक ठोस आयताकार पत्थर की कीमत 8 रु हो तो इसी तरह के 2 अन्य पत्थरों की कीमत क्या होगी, जिनकी लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई क्रमशः 10, 7 और 2 हो।

यहाँ प्र = (9x5x1) x1;

फ = 8

और इ = (10x7x2)x2

इसलिये वांछित कीमत = $\frac{\text{इ} \times \text{फ}}{\text{प्र}} = \frac{(10x7x2x2) \times 8}{(9x5x1x1)} = 49\frac{7}{9}$ रु.

लीलावती ग्रन्थ से नवराशिक का उदाहरण हम पहले दे चुके हैं (अध्याय 1 देखिये।

एकादशराशिक का उल्लेख ब्रह्मगुप्त ने अपने *ब्रह्मस्फुट सिद्धांत* के गणिताध्याय (XII, 11) में किया है। इसका उदाहरण लीलावती में इस प्रकार है–

उदाहरण (12): 12x16x14 नाप के लकड़ी के 30 पटियों को 1 गव्यूति दूरी तक वहन करने का भाड़ा गाड़ी वाले को 8 द्रम्म दिया गया। तो बताओ कि 8x12x10 नाप के 14 पटियों को 6 गव्यूति वहन करने में कितना भाड़ा लगेगा ?

यहाँ प्र = 12x16x14x30x1;

फ = 8

और इ = 8x12x10x14x6

इसलिये, वांछित भाड़ा = $\frac{(8x12x10x14x6) \times 8}{(12x16x14x30x1)}$

= 8 द्रम्म

पर श्रीधर का एक उदाहरण ऊटों पर है।

उदाहरण (13) : यदि 10 वर्ष उम्र के 3 ऊँटों से 108 पुराण प्राप्त हो जाते हैं, तो बताओ कि 9 वर्ष उम्र के 5 ऊँटों से क्या मिलेगा ?

चूंकि जीवों का विक्रय मूल्य उम्र कम होने से ज्यादा, और उम्र ज्यादा होने से कम होता है, इसलिये उम्र का पक्ष व्यस्त होने से पलट जायेगा।

अतः यहाँ–

प्र = 9x3; फ = 108; इ = 10x5

इस प्रकार उत्तर होगा,

$$\frac{(10\text{x}5)\text{x}108}{9\text{x}3} = 200$$ पुराण।

इसी प्रकार गीत नृत्यादि कलाओं का प्रदर्शन करने वाली स्त्रियों (Heroines) की 16 वर्ष की आयु के बाद, आयु में ह्रास होने की बात ग्रन्थों में कही गई है।

ऊपर के विवेचन और उदाहरणों से स्पष्ट है कि त्रैराशिक अंकगणित का एक व्यापक बुनियादी नियम है। ज्यामितीय प्रश्नों के प्रसंग में वह उस प्रमेय की तरह कार्य करता है जिसके अनुसार समानरूपी क्षेत्रों में भुजाएँ समानुपाती होती हैं। वास्तव में जहाँ भी सरल अनुपात का नियम (Rule of simple proportion) लगता है, वहां त्रैराशिक का ही उपयोग किया जाता है चाहे अंकगणित हो, चाहे ज्यामिति या त्रिकोणमिति और चाहे फलनीय मानों का अन्तर्वेशन (interpolation)।

त्रैराशिक के विविध उपयोगों में वर्गमूल का आसन्न मान निकालने के एक प्राचीन नियम पर विचार करते हैं। सूत्र इस प्रकार है-

$$\sqrt{a^2 + x = a + \frac{x}{2a+1}} \qquad (2)$$

यहाँ केवल धन मूल ग्रहण किया गया है

उदाहरणार्थ

$$\sqrt{10} = \sqrt{3^2+1} = 3 + \frac{1}{7} \qquad (3)$$

सूत्र (2) की प्राप्ति इस प्रकार की जा सकती है–

जब C का मान 0 है, तब $\sqrt{a^2+c}=a$;

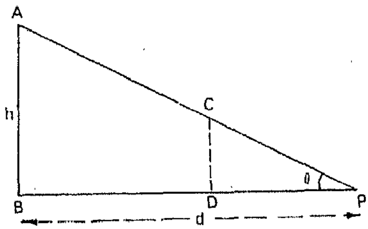
और जब C का मान (2a+1) है, तब $\sqrt{a^2+c}=a+1$ होगा।

अर्थात् जब C का मान 0 से (2a+1) हो जाता है, तब वर्गमूल का मान a से (a+1) हो जाता है। यानी जब C में (2a+1) की वृद्धि होती है तो वर्गमूल में 1 की वृद्धि होती है। अतः यदि C में x की वृद्धि (0 आधार मानकर) हो तो वर्गमूल में कितनी वृद्धि होगी। त्रैराशिक से उत्तर होगा।

$x \times 1 / (2a+1)$

अतः $\sqrt{a^2+x} = a+\frac{x}{2a+1}$

कुछ प्राचीन ग्रन्थों का अनुसरण करके ब्रह्मगुप्त ने π का मान $\sqrt{10}$ लिया है। लेकिन अलबेरुनी का कथन है कि ब्रह्मगुप्त को π का 22/7 आसन्न मान भी ज्ञात था। हो सकता है कि इसका कारण समीकरण (3) हो, अन्यथा ब्रह्मगुप्त की कृतियों में कहीं पर भी $\pi = 22/7$ नहीं मिलता।



चित्र 6.3

त्रिकोणमिति के फलनों की परिभाषाओं और उपयोगों का आधार त्रैराशिक ही है। यदि किसी बिन्दु P से एक खम्बे की चोटी A का उत्सेधकोण (angle of elevation) θ और P की क्षैतिज दूरी d हो, (चित्र 6.3), तो खम्बे की ऊँचाई होगी–

$$h = d \tan\theta \qquad (4)$$

वास्तव में यहाँ गौण रूप से त्रैराशिक लागू किया गया है। क्योंकि $\tan\theta$ के मान में किसी त्रिभुज CDP की भुजाओं का अनुपात छिपा है, अर्थात्

$$\tan\theta = CD/PD \qquad (5)$$

ज्यामितीय भाषा में हम कह सकते हैं कि जब दूरी PD है, तो ऊँचाई CD है, यदि दूरी

PB हो तो ऊँचाई कितनी होगी ? त्रैराशिक से

$$AB = PB \times CD/PD \quad (6)$$

इसको हम समरूप त्रिभुज ABP और CDP की भुजाओं के समानुपात अर्थात्

$$\frac{AB}{CD} = \frac{BP}{DP} = \frac{AP}{CP} \quad (7)$$

से भी प्राप्त कर सकते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि जो बात अंकगणित में त्रैराशिक नियम, कहना चाहता है, वही बात ज्यामितीय और त्रिकोणमितीय भाषाओं में अपने-अपने ढंगों से कही गई है।

अन्त में इस विषय के संक्षिप्त इतिहास की रूप रेखा का भी उल्लेख करके अध्याय का समापन करते हैं। भारत में वैदिक काल से ही त्रैराशिक का प्रयोग होता आ रहा है। *वेदांगज्योतिष* और *शुल्बसूत्रों* में तो इसके बिना काम ही नहीं चल सकता था। *छांदोग्य-उपनिषद* में लिखा है कि ब्रह्म-विद्या पढ़ने के पहले नारद जी ने राशि विद्या का ज्ञान प्राप्त किया था। जैन-ग्रन्थ *स्थानांग सूत्र* (लगभग 300 ई.पूर्व) में गिनाये गये विषयों में 'राशि' भी एक था। एक बड़ी महत्वपूर्ण बात यह है कि 11वीं शताब्दी में अलबेरूनी ने *फी राशिकातं अलहिन्द* (भारत के बहुराशिक) नाम से एक स्वतंत्र पुस्तक इस विषय पर लिखी। इससे भारतीय त्रैराशिक आदि नियमों को गौरव तो मिला ही, साथ में उनका पहले अरब जगत में और फिर यूरोप में खूब प्रचार हुआ। यूरोप के निवासियों को तो त्रैराशिक इतना भाया कि वे इसे "स्वर्णिम नियम" (Golden Rule) कहने लगे। इस प्रकार गणित के इस अत्यन्त सरल एवं उपयोगी नियम के लिए भी पश्चिम पूर्व का ऋणी है।

अध्याय 7

सूक्ष्म गणित से कामनाओं की पूर्ति

ईसा पूर्व सन् 430 के आसपास का काल, यूनान के लिए महाकाल की तरह था। उस समय वहाँ के प्रसिद्ध महानगर एथेन्स (Athenes) में महामारी (Plague) का भयंकर प्रकोप हुआ जिसके फलस्वरूप वहाँ के चौथाई से भी अधिक नागरिक काल के गाल में चले गये।

कहा जाता है कि एथेन्स के महान राजनीतिज्ञ और सेनापति पेरिक्लीज (ई.पू. 490-429) की मौत इसी महामारी के कारण हुई थी। यह वही व्यक्ति था जिसने एथेन्स को अपनी सम्पन्नता और भव्यता के सर्वोच्च शिखर पर पहुंचाया था और जिसके युग में साहित्य और कला की बहुत ही सुंदर रचनाएँ हुई थीं।

महामारी की रोकथाम के अनेक प्रयत्न किए गए। लेकिन जब औषधि, प्रार्थना और जन्तर-मन्तर किसी से भी काम न चला, तो नागरिकों ने जगत् प्रसिद्ध पवित्र स्थल देलॉस (Delos) के दिव्य संदेश (oracle) से महामारी के शमन का उपाय जानने के लिए एक प्रतिनिधि मण्डल भेजा। पुकार सुनकर दिव्य संदेश (oracle) ने सूचित किया कि यदि एथेन्स निवासी अपोलो (Apollo) मंदिर में बनी घनाकार वेदी के आयतन को बड़ा करके दुगना कर दें तो प्रकाश, संगीत तथा भविष्यवाणी के देवता अपोलो (Apollo) प्रसन्न होकर महामारी समाप्त कर देंगे। प्रतिनिधि मण्डल ने आभार व्यक्त किया और वापिस आकर सिद्धवाणी



यूनान की देवी अथीना
चित्र **7.0 (अ)**

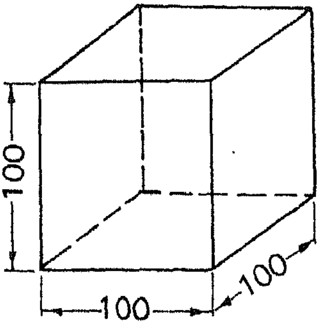


यूनान के देवता अपोलो
चित्र **7.0 (ब)**

द्वारा बताये उपाय को नागरिकों के समक्ष रखा।

नागरिकों ने सफल अभियान के लिए प्रतिनिधि मण्डल को धन्यवाद दिया। उन्होंने बड़े उत्साह और हर्ष के साथ दिव्य संदेश (oracle) को शिरोधार्य किया। मंदिर की वेदी 100 फीट लम्बी, 100 फीट चौड़ी तथा 100 फीट ऊँची थी (चित्र 7.1)

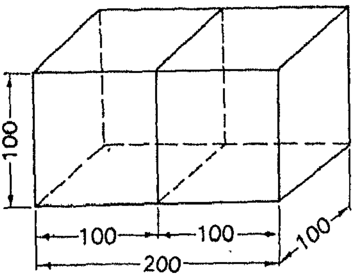
नागरिकों ने ठीक उसी आकार और नाप की घन संरचना उसके बगल में सटाकर बनवा दी। इस प्रकार लम्बाई 100 से बढ़कर 200 फीट हो गई और वेदी का आयतन दुगना हो गया (चित्र 7.2) जैसा कि अपेक्षित था। लेकिन महामारी का प्रकोप कम होने



चित्र 7.1

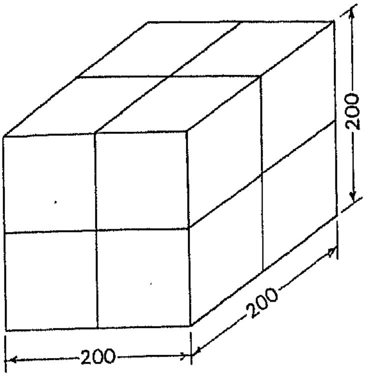
की जगह और बढ़ गया और अधिक लोग मौत के घाट उतरने लगे। नागरिकों में बड़ी चिन्ता हुई। लोग जानते थे कि दिव्य संदेश (Oracle) की बातें कभी झूठ नहीं निकलीं। फिर भी नागरिकों को प्रकोप कम होने की जगह बढ़ने की बात समझ में नहीं आ रही थी।

अतः प्रतिनिधि मण्डल को पुनः देलॉस (Delos) भेजा गया। एथेन्स वासियों की दुर्दशा का कारण और निदान पूछने पर, दिव्य संदेश ने बताया कि नागरिकों से एक बड़ी भूल हो गई है। वेदी को उन्होंने बड़ा अवश्य किया, लेकिन उसका 'आकार' बदल गया। चूंकि अपोलो देवता को ठीक घनाकार वेदी ही पसन्द है, इसलिए वे एथेन्स निवासियों से क्रुद्ध हैं। महामारी से छुटकारा पाने का एकमात्र उपाय यही है कि वेदी के आकार को घन रखते हुए उसे बढ़ा कर दुगना करो।



चित्र 7.2

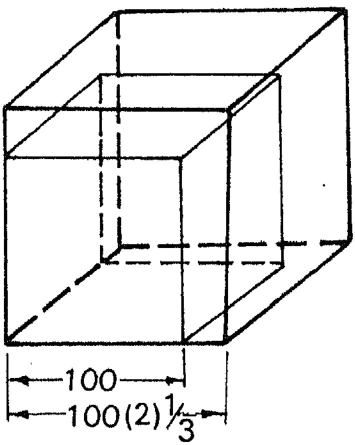
प्रतिनिधि मण्डल ने वापिस जाकर सारी बातें एथेन्स निवासियों को सुनाई। फिर क्या था। अपोलो देवता को प्रसन्न करने के लिए उन्होंने वेदी का घनाकार स्वरूप बरकरार रखते हुए उसे बढ़ाने का काम शुरू कर दिया। लम्बाई को उन्होंने पहले ही दुगुना कर दिया था। अब चौड़ाई और ऊँचाई को भी दुगुना कर दिया। इस तरह उन्होंने मूल 100 फीट लम्बी, चौड़ी और ऊँची घनाकार वेदी को बढ़ाकर दुगुनी (अर्थात् 200 फीट) लम्बी, चौड़ी तथा ऊँची घनाकार वेदी बनवाकर तैयार करवा दी (चि 7.3)। एथेन्स के नागरिकों को पूरी आशा थी कि अपोलो देव जी नई वेदी से अवश्य प्रसन्न होंगे, और महामारी समाप्त हो जायेगी। दुर्भाग्यवश महामारी का प्रकोप कम नहीं हुआ और इस तरह उनकी आशाओं पर पानी फिर गया। अब तो एथेन्स निवासी बहुत घबराये। उनकी समझ में यह नहीं आ रहा था कि मामला क्या है और न यह कि अब वे क्या करें ?



चित्र 7.3

विचार विमर्श हुआ। दिव्य संदेश पर अटूट विश्वास होने के कारण उसकी बातों पर संदेह करने का तो कोई प्रश्न ही न था। तो फिर माजरा क्या है, और क्या किया जाये। निर्णय यही हुआ कि प्रतिनिधि मण्डल फिर एक बार देलॉस भेजा जाये।

वैसा ही किया गया। इस बार दिव्य संदेश ने बताया कि तीनों आयामों को दुगना करने से तो घनफल यानी आयतन आठ गुना बड़ा हो गया। अर्थात् घनाकार मूल वेदी बढ़ाकर आठ गुनी कर दी गई है। जबकि शर्त ठीक दुगुनी करने की थी। अतः अपोलो देवता अभी भी नाराज हैं। वे तो सूक्ष्म आकार और प्रमाण की बनी वेदियों से प्रसन्न होते हैं। इसलिये जाओ और ठीक दुगुने आयतन की घनाकार वेदी बनाओ।



चित्र 7.4

प्रतिनिधि मण्डल कृतज्ञता प्रकट करके वापस चला गया, और दिव्य संदेश से प्राप्त बातों को यथावत् नागरिकों के समक्ष रखा।

यदि मूल वेदी की प्रत्येक भुजा को a से निरूपित करें तो उसका आयतन a^3 होगा। अतः अपेक्षित वेदी का आयतन $2a^3$ होना चाहिए, और उसकी प्रत्येक भुजा का मान होगा $2a^3$ का घनमूल अर्थात्

$\sqrt[3]{2}a$ या $(2)^{1/3}a$

हमें विदित है कि a=100 फीट, इसलिये अपेक्षित वेदी की लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई में प्रत्येक का प्रमाण ठीक $(2)^{1/3}$ 100 फीट होना

चाहिए (चित्र 7.4)। इस प्रमाण की लम्बाई ठीक ठीक कैसे बनाई जाये, यह समस्या उठ खड़ी हुई। और इस समस्या को कोई कुशल गणितज्ञ ही सुलझा सकता था। जिसके अभाव में नागरिक किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये।

अतः इसके बाद क्या हुआ, यह कहना कठिन है। क्योंकि कुछ निश्चित और विश्वसनीय वर्णन इस संबंध में उपलब्ध नहीं है।

कुछ लोग कहते हैं कि यूनान के प्रसिद्ध गणितज्ञ प्लेटो (Plato) के पास उस समय लोग इस समस्या के समाधान के लिए गये थे। लेकिन यह बात सरासर झूठ है क्योंकि प्लेटो का जन्म तो बाद में ई. पू. सन् 427 में हुआ था।

ऊपर का वर्णन मुख्यतः उन बातों पर आधारित है जिसे यूनानी दार्शनिक और वैज्ञानिक जॉन फिलोपोनस (ई. 6वीं शताब्दी) ने लिखा है।

वैसे, जैसा कि इस प्रकार की कहानियों में अक्सर होता है, वर्णन के कुछ अन्य रूप भी देखने को मिलते हैं। हमें उन सबके झमेलों में पड़ने की आवश्यकता नहीं है।

हमारा प्रयोजन यहाँ केवल यह दिखाने का है कि जब तक सूक्ष्म गणित लगाकर दी गयी शर्तों के अनुसार आकृतियों की रचना नहीं की जाती, निर्धारित लक्ष्य प्राप्त नहीं होता।

नित्य और काम्ययज्ञ

भारतवर्ष में यज्ञों और अन्य धार्मिक कार्यों के लिये वेदी तथा चिति बनाने की परम्परा आदिकाल से चली आ रही है। प्राचीन वैदिक धर्म, कर्म प्रधान था। वेदों के अनुसार यज्ञ तथा अन्य धार्मिक अनुष्ठान करना प्रत्येक हिन्दू का पुनीत कर्तव्य था। उस समय मन्दिर नहीं थे। किसी उपयुक्त जगह को ही यज्ञ-स्थल के रूप में तैयार कर लिया जाता था। निर्धारित आकार और माप की बनी यज्ञशाला को वेदी (altar) कहते थे। वैदिक यज्ञाग्नि के लिए बनाया स्थान कुछ ऊँचा होता था और निर्धारित आकृति और माप का बनाया जाता था। इसे अग्नि, चिति या अग्नि-चिति (Fire-altar) कहते थे। सुविधा के लिए हम वेदी, अग्नि और चिति, इन सबको वेदी (altar) भी कहते हैं। सबसे ज्यादा ध्यान देने योग्य बात तो यह है कि लक्ष्य प्राप्त करने के लिए सभी प्रकार की वेदियों की रचना

वैदिक मंत्रों में निर्दिष्ट ठीक दिशा, माप और आकृति के अनुसार ही की जानी चाहिए।

वैदिक या श्रुतिनिहित यज्ञ दो तरह का होता है। एक नित्य और दूसरा काम्य। नित्ययज्ञ करना अनिवार्य था और इसके लिए आह्वनीय, गार्हपत्य, और दक्षिणाग्नि, ये तीन प्रकार की अग्नियाँ होती थीं। वे क्रमशः वर्ग, वृत्त और अर्धवृत्त (या अर्धचंद्र) के आकार की होती थीं। इन आकृतियों की माप, दिशा और सापेक्ष स्थितियाँ शास्त्रों में वर्णित हैं।

काम्ययज्ञ कामनाओं की पूर्ति के लिए किया जाता था और इसका करना सबके लिए अनिवार्य न था। केवल वही व्यक्ति काम्ययज्ञ का अनुष्ठान करता था जिसे किसी विशेष इच्छा को पूरी करने की कामना हो जैसे मरने के बाद स्वर्ग प्राप्ति, आदि। लेकिन विभिन्न प्रकार की कामनाओं के लिए विभिन्न प्रकार की वेदियों की आवश्यकता होती थी। प्रत्येक वेदी की रचना वैदिक मंत्रों में दिये गये उसके आकार, माप और दिशा इत्यादि के अनुसार बिल्कुल ठीक-ठीक करनी पड़ती थी। यह बात जोर देकर कही जाती थी कि यदि निर्धारित आकृति या नाप में जरा सी भी त्रुटि या अनियमितता होगी तो लक्ष्य प्राप्ति की कौन कहे, यजमान पर कुछ उल्टा प्रभाव भी पड़ सकता है। इस प्रकार सूक्ष्म गणित न जानने पर लोगों को लेने के देने पड़ जायेंगे।

बाद में स्मृतिबिहित धर्मकृत्यों जैसे देवस्थापन, महादानादि, में हवन करने के लिए अग्नि कुण्डों (fire-pits) की आवश्यकता होती थी। सामान्यतया ये कुण्ड आठ आकृतियों के बताये गये हैं जिनमें वृत्त, त्रिभुज, षड्भुज, पद्म सम्मिलित हैं। विशेष बात यह है कि कुण्ड का आकार कोई भी हो उसका क्षेत्रफल धर्मकृत्य के अनुसार दी जाने वाली हवन की आहुतियों की संख्या पर निर्भर करता है। क्षेत्रफल बिल्कुल ठीक होना चाहिए नहीं तो यजमान को दुष्परिणाम भोगने पड़ सकते हैं। चेतावनी स्पष्ट शब्दों में इस प्रकार है–

"मानाधिक्ये भवेद् रोगी मान हीने दरिद्रता।"

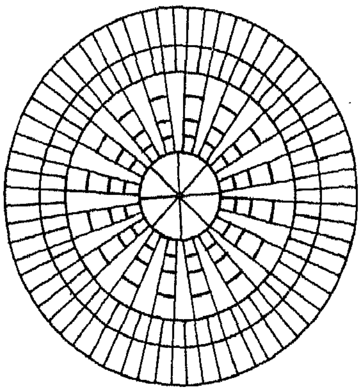
अर्थात् "क्षेत्रफल का मान निर्धारित मान से अधिक हुआ तो रोग होगा, और यदि कम हुआ तो दरिद्रता होगी।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि चाहे श्रौत कर्म हो या स्मार्त कर्म, चाहे काम्ययज्ञ हो या हवन, कामनाओं की पूर्ति के लिये गणित का सूक्ष्म ज्ञान आवश्यक है।

कृष्ण यजुर्वेदीय तैत्तिरीय संहिता (V, 4.11) के अनुसार वांछित लक्ष्यों के लिये विभिन्न

प्रकार की काम्य चितियों का वर्णन इस प्रकार है–

1. वर्तमान आक्रमणकारी शत्रुओं को विफल करने के लिए *प्रउगचिति* जिसकी आकृति रथ के अग्र भाग की तरह, समद्विबाहु त्रिभुज होती है।
2. वर्तमान और भविष्य में होने वाले शत्रुओं को विफल करने के लिए *उभयतःप्रउग चिति* जिसकी आकृति समचतुर्भुज (rhombus) की तरह होती है।
3. बैरियों पर विजय पाने के लिये *रथ चक्र चिति* जिसका आकार, रथ के पहिये की तरह, गोल होता है (चित्र 7.5)।



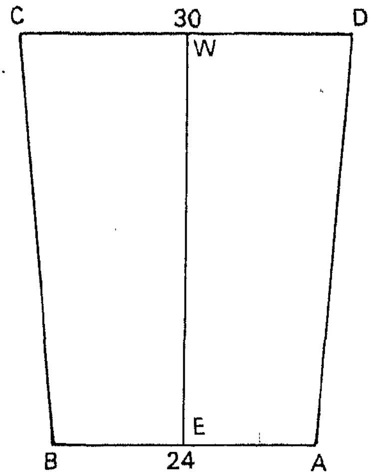
चित्र 7.5 रथ चक्र चिति

4. जमीन (Land) और गांव प्राप्त करने के लिये *परिचाय्य* चिति जिसमें अनेक एक केन्द्रीय वृत बनाये जाते हैं।
5. आहार और भोजन सम्बंधी इच्छाओं के लिये *द्रोणचिति* जिसका आकार गोल या चौकोर नाद की तरह होता है।
6. पितृलोक या उसके सफल और सुखमय जीवन के लिए *श्मशानचिति* जिसकी आकृति समलम्ब चतुर्भुज (trapezium) की तरह होती है।
7. पशुधन की कामना करने वालों को *छन्दश्चिति* जिसकी रचना में ईंटों के स्थान पर छन्दों (metres) का प्रयोग करना होता है।

   याद रखिये पहले पशुओं का बहुत महत्त्व था चाहे खेती बाड़ी हो, परिवहन या युद्ध। किसी कवि ने कहा है–

   "गोधन, गजधन, बाजिधन और रतनधन खान।
   जब आये संतोषधन सब धन धूरि समान।।"

8. "श्येनचितं चिन्वीत स्वर्गकामः" अर्थात् स्वर्ग की कामना करने वाले को श्येनचिति पर काम्ययज्ञ करना चाहिए। क्योंकि आकाश में ऊँचाई पर उड़ने के लिये श्येन श्रेष्ठ है। इसकी आकृति पंख फैलाये श्येन पक्षी (falcon or hawk) की तरह बनाई

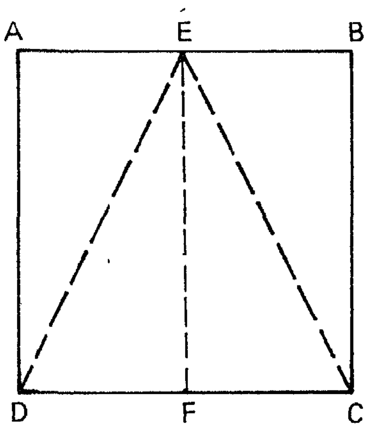


चित्र 7.6 महावेदी

जाती है। इसकी रचना जितनी जटिल है, उतनी ही महत्वपूर्ण यह चिति है।

इसके अतिरिक्त तैत्तिरीय संहिता में दो अन्य पक्षी कंक और अलज के आकार की चितियों की बात कही गई है, जिनकी रचनाएँ और फल श्येनचिति के बहुत कुछ समान हैं।

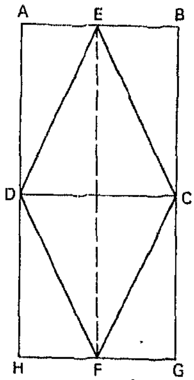
अब हम कुछ मुख्य वेदियों और चितियों की मापों का विस्तार से वर्णन करेंगे। यज्ञस्थलों में सबसे महत्वपूर्ण है महावेदी जिसे सौमिकी वेदी भी कहते हैं (चित्र 7.6)। इसका आकार एक द्विसम समलम्ब चतुर्भुज है। जिसमें समान्तर भुजाओं की लम्बाई 24 और 30 तथा इन दोनों के बीच की दूरी 36 पद या प्रक्रम होती है। 24 पद वाली भुजा पूर्व में और 30 पद वाली भुजा पश्चिम में होती थी। इन दोनों के मध्य बिन्दुओं को मिलाने वाली रेखा को प्राची कहते थे। इसकी दिशा ठीक पश्चिम से पूर्व की ओर होती थी। इन मापों का उल्लेख *तैत्रिरीय संहिता* (VI, 2.4) और *शतपथ ब्राह्मण* (III, 4.1) इत्यादि प्राचीन वैदिक साहित्य में है। उसको बनाने के लिये पहले हम W बिन्दु पर एक शंकु स्थापित कर पूर्व की ओर जाने वाली रेखा WE का पता लगायें। उस पर WE=36 अंकित कर दें। इस प्राची रेखा के W और E बिन्दुओं पर उसके लम्ब रेखाएं खींच लें। फिर W पर दक्षिण और उत्तर की तरफ 15 पद तथा E पर इसी तरह 12 पद नाप कर A, B, C, D बिन्दु प्राप्त किये जा सकते हैं (चित्र 7.6 देखें)।



चित्र 7.7

पद या प्रक्रम के मान के बारे में मतभेद हैं। कात्यायन ने पद को 12 अंगुल लम्बा लिया है, जहाँ एक अंगुल (finger breadth) लगभग 3/4 इंच लेते हैं।

किसी भी आकृति की काम्य चिति का क्षेत्रफल प्रारम्भ (अर्थात्· पहले दिन) सामान्यतया $7\frac{1}{2}$ वर्ग पुरुष रखा जाता है (1 पुरुष = 120 अंगुल)। अतः प्रउगचिति (चित्र 7.7) बनाने के लिए पहले एक दुगुने क्षेत्रफल अर्थात् 15 वर्ग पुरुष वाले वर्ग की रचना करते हैं। फिर पूर्वी भुजा के मध्य बिंदु E सामने के कोनों से मिला दिये जाते हैं। इस प्रकार त्रिभुज EDC से प्रउगचिति की आकृति मिल जाती है और उसका क्षेत्रफल $7\frac{1}{2}$ वर्ग पुरुष है।



चित्र 7.8

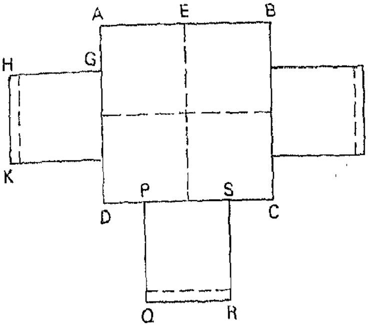
यहाँ DC = $\sqrt{15}$ पुरुष = $120\sqrt{15}$ अंगुल

= 464.76 या $464\frac{3}{4}$ अंगुल लगभग।

उभयतः प्रउग के लिये (चित्र 7.8) पहले दो वर्ग ABCD और DCGH सटाकर बनाते हैं (प्रत्येक का क्षेत्रफल $7\frac{1}{2}$ वर्ग पुरुष)। इससे 15 वर्ग पुरुष क्षेत्रफल का एक आयत ABGH मिल जाता है। उससे उभयतः प्रउगचिति की आकृति ECFD प्राप्त होती है, जिसका क्षेत्रफल $7\frac{1}{2}$ वर्ग पुरुष है (चित्र 7.8)।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, श्येनचिति सबसे जटिल और महत्वपूर्ण है। अभी हाल की खुदाई में इलाहाबाद के पास कौसाम्बी में इस चिति* के अवशेष मिले थे। इसका एक सरल रूप है चित्र 7.8।

चित्र 7.9 चतुरश्रश्येन चिति है। यहाँ मुख्य शरीर (जिसे आत्मन् कहते हैं) ABCD में चार वर्ग हैं जिसमें प्रत्येक का क्षेत्रफल एक वर्ग पुरुष है। दोनों तरफ पंख के लिये दो आयत होते हैं जिनमें प्रत्येक की लम्बाई $(1+\frac{1}{5})$ पुरुष (= HG) है और चौड़ाई HK =1 पुरुष होती है। नीचे की पूँछ की लम्बाई $(1+\frac{1}{10})$ पुरुष और चौड़ाई 1 पुरुष है।



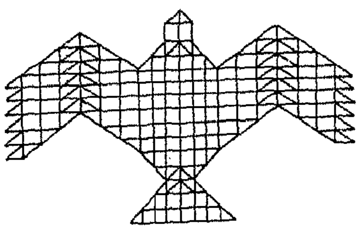
चित्र 7.9

इस प्रकार पूरा क्षेत्रफल

$= 4+2\left(1+\frac{1}{5}\right)+\left(1+\frac{1}{10}\right) = 7\frac{1}{2}$ वर्ग पुरुष, जैसा कि होना चाहिए।

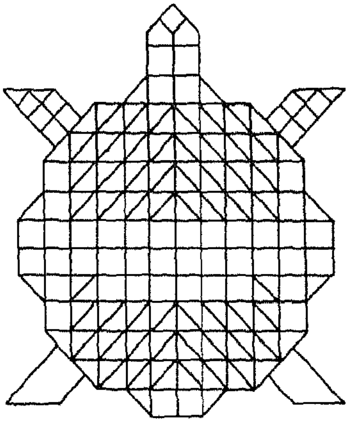
वक्रपक्ष व्यस्तपुच्छ श्येन चिति की आकृति बड़ी होशियारी से, बनाई जाती है (चित्र 7.10)। विशेष ध्यान रखने वाली बात यह है कि शरीर, पूँछ, सिर, तथा दोनों पंखों का क्षेत्रफल मिलाकर $7\frac{1}{2}$ वर्ग पुरुष ही होना चाहिये (अन्यथा यजमान स्वर्ग न जाकर नरक में जा सकता है)। यदि ब्रह्मलोक की कामना हो तो कूर्मचिति (चित्र 7.11) का चयन करना होगा।

अब अनिवार्य नित्य यज्ञ के लिये आवश्यक तीन पवित्र अग्नियों के विषय में कुछ चर्चा करते हैं। एच. ओल्डेनवर्ज (Oldenberg) के अनुसार ये अग्नियाँ ऋग्वेद से भी प्राचीन हैं। लगभग 5000 वर्षों से चली आ रही उनकी परम्परा इतनी प्राचीन है कि आज हमें उनके बारे में पूरी जानकारी नहीं है। इस समय, भारत की विशालता और सम्प्रदायों की भिन्नता के कारण कुछ मतभेद हैं। जैसे कि आज हमें उनके बारे में पूरी जानकारी नहीं है। गार्हपत्य अग्नि की आकृति अधिकतर स्रोतों में वृत्त मानी गई है, लेकिन कुछ में उसे वर्गाकार भी कहा गया है। आह्वनीय तो सदैव वर्गाकार और दक्षिणाग्नि सदैव अर्ध चन्द्राकार ली जाती है। प्रत्येक का क्षेत्रफल एक वर्ग व्याम या पुरुष लिया गया है, जिससे हम उनकी भुजाओं या व्यासों के मान साधारण गणित लगाकर प्राप्त कर सकते हैं।



चित्र 7.10 वक्र पक्ष व्यस्त पुच्छ श्येनचिति

माना कि क्षेत्रफल $= A$ वर्ग अंगुल।



चित्र 7.11 कूर्मचिति

तो आह्वनीय की भुजा = $\sqrt{A}$ अंगुल।

गार्हपत्य का अर्धव्यास = $\sqrt{A/\pi}$ अंगुल।

और दक्षिणाग्नि का अर्धव्यास = $\sqrt{2A/\pi}$ अंगुल।

इन सबकी विवेचना से प्रेरणा लेकर प्राचीन भारत के गणितज्ञों ने वर्ग को वृत्त में और वृत्त को वर्ग में बदलने के नियमों की खोज की है। इनका विवरण हमें शुल्व सूत्रों में मिलता है, जिसमें नित्य और काम्य अग्नियों, चितियों और वेदियों का गणित विस्तार से दिया हुआ है। महाभारत के शान्तिपर्व में पिता को गार्हपत्य अग्नि, माता को दक्षिणाग्नि, और गुरु को आह्वनीय अग्नि कहा गया है। भारतीय गणित में शुल्व सूत्रों का विशेष महत्व होने के कारण अब हम उनके बारे में कुछ विस्तृत जानकारी देंगे।

शुल्बसूत्र और उनका महत्व

भारत के सबसे प्राचीन ग्रन्थों में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, और अथर्ववेद हैं। इनसे संबद्ध अनेक वैदिक सम्प्रदाय थे। अतः वेदों की अनेक शाखाएँ, पाठ, और संहिताएँ उपलब्ध हैं। किसी भी वेद के विशेष और विस्तृत अध्ययन के लिए उसका प्रातिसाख्य पढ़ना जरूरी है। फिर भी सभी वेदों के सामान्य अध्ययन के लिये तो 6 वेदांगों के पढ़ने से बहुत कुछ काम चल जाता है। ये वेदांग हैं शिक्षा (phonetics), कल्प (ritualistics), व्याकरण (grammar) , निरुक्त (etymology), छन्दस् (prosody) तथा ज्योतिष (astronomy and astrology) जैसा कि निम्नलिखित पारम्परिक श्लोक से स्पष्ट है–

शिक्षा कल्पो व्याकरणं, निरूक्तं छन्दसांचयः।
ज्योतिषामयनं चैव वेदाङ्गानि षडेव तु।।

"कल्पोनामविधिः" के अनुसार कल्प में वैदिक यज्ञों और अन्य अनुष्ठानों को आयोजित

और सम्पन्न करने के नियम तथा उनसे संबंधित अन्य बातें हैं। कल्प के तीन भेद हैं– श्रौतसूत्र, गृहमसूत्र, और धर्मसूत्र। इनमें श्रौतसूत्र हमें विभिन्न प्रकार के यज्ञों को करने के लिये विस्तृत जानकारी देते हैं। पुरोहित, यजमान इत्यादि के क्या कर्तव्य हैं, यह सब बताया गया है। यज्ञ के समय, स्थान, सामग्री आदि के बारे में विस्तार से चर्चा की गयी है।

श्रौतसूत्रों के अन्तर्गत कुछ भाग ऐसे हैं जिनको शुल्बसूत्र कहते हैं। ऐसा विशेष रूप से उन श्रौतसूत्रों के बारे में हैं जो यजुर्वेद की संहिताओं से संबद्ध हैं। कभी कभी शुल्बसूत्र स्वतंत्र पुस्तिकाओं के रूप में उपलब्ध होते हैं। शुल्ब शब्द, 'शुल्ब' या 'शुल्व' धातु से है, जिसका अर्थ है "नापना"। वैसे शुल्ब का साधारण मतलब है रस्सी या डोरी जिसकी मदद से जमीन पर नापने, निशान लगाने और चाप इत्यादि खींचने का काम किया जाता था। इस तरह के कार्य में जो दक्ष होता था उसे शुल्बविद् कहते थे। सूत्र शैली (aphoristic style) में लिखे जाने के कारण इन्हें "सूत्र" कहते हैं।

अब तक लगभग एक दर्जन शुल्बसूत्रों के नाम ज्ञात हो गये हैं। वे हैं – बौधायन, आपस्तम्ब, कात्यायन, मानव, सत्याषाढ़, मैत्रायण, वराह, वाधूल, मशक, हिरण्यकेशिन् , और लौगाक्षी। इनकी रचना अलग-अलग समयों में हुई, और इस विषय में काफी मतभेद हैं। अतः निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है। सामान्यतया *बौधायन शुल्बसूत्र*, जो सबसे प्राचीन है, का समय ईसवी पूर्व 800 से 500 तक माना जाता है।

हालाँकि शुल्बसूत्रों का सूत्रपात बाद में हुआ, फिर भी उनमें संग्रहित बहुत-सी सामग्री प्राचीन वैदिक काल की है। उनमें उल्लेखित गणित परम्पराएं पुरानी हैं। उनके अध्ययन से हमें प्राचीन भारतीय जीवन और जीवन-दर्शन की झलकियाँ मिलती हैं। मानवीय बौद्धिक विकास के इतिहास के अध्ययन में शुल्बसूत्र सहायक हो सकते हैं। प्राचीन भारतीय ज्ञान-विज्ञान और उसके इतिहास तथा दर्शन का मूल्यांकन करते समय उनकी अनदेखी नहीं की जा सकती। विश्व की प्राचीन गणितीय परम्पराओं की ऐतिहासिक जानकारी और व्याख्या के लिये उनका अध्ययन बहुत जरूरी है। वे विश्व की प्रथम ज्यामितीय पुस्तकें कही जा सकती हैं।

ए. सी. बर्नेल (A.C. Burnell) शायद प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने सन् 1869 ई. में शुल्ब

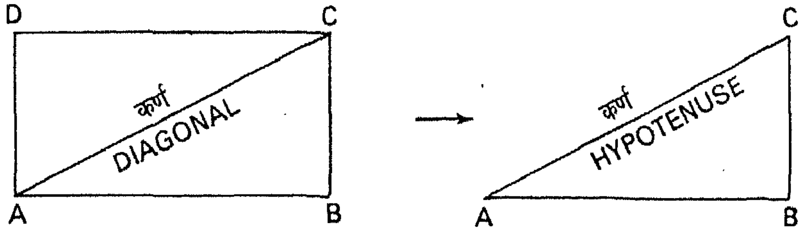
सूत्रों के महत्व की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया था। कुछ वर्षों बाद जर्मन विद्वान जी. थीबो (G. Thibaut) ने *बौधायन शुल्बसूत्र* का सटीक अनुवाद प्रकाशित किया जिससे लोगों को पर्याप्त जानकारी प्राप्त हुई। विभूति भूषण दत्त (जो संन्यास के बाद स्वामी विद्यारण्य के नाम से प्रसिद्ध हुए) का विस्तृत अध्ययन *The Science of the Sulba* कलकत्ता विश्वविद्यालय से 1932 में छपा। अभी हाल में ए. साइडेनबर्ग (Seidenberg) ने शुल्ब सूत्रों का विशेष अध्ययन किया। उनकी खोजों का उपयोग करके बी. एल. वान्डेरवार्डेन (B. L. Vander Waerden) ने प्राचीन भारोपीय (Indo-European) लोगों की सभ्यता में विश्वगणित के श्रीगणेश होने की परिकल्पना प्रस्तुत की है (समय था लगभग 7000 साल पहले)। इस प्रकार शुल्बसूत्रों का अध्ययन, प्राचीन मानवीय सभ्यता के समझने और उसके आधार पर "वसुधैव कुटुम्बकम्" की भावना जाग्रत करने में उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

धार्मिक, ऐच्छिक और पारलौकिक जीवन को समृद्ध, सुखी, और सफल बनाने के लिये किये जाने वाले नित्य तथा काम्य यज्ञों के गणित की जानकारी देने के कारण शुल्बसूत्र महत्वपूर्ण हैं। वे *वेदांग ज्योतिष* के आदर्श *"गणितं मूर्धनिस्थितम्"* को चरितार्थ करते हैं।

शुल्ब सूत्रों में वर्णित प्रचुर गणितीय सामग्री के विवेचन की यहाँ गुंजाइश नहीं है। फिर भी संक्षेप में कुछ बातें बताई जाती हैं। शुल्बसूत्रों में दिये गये $\sqrt{2}$ के आसन्न परिमेय मान 577/408 की चर्चा पहले हो चुकी है (अध्याय 5 देखें)।

समकोण-त्रिभुज का अध्ययन (जैसे पाइथागोरस के नाम से जाना जाने वाला प्रमेय, $c^2 = a^2+b^2$) आयत के अर्ध के रूप में किया जाता था। यही कारण है कि हिन्दी और संस्कृत का शब्द "कर्ण" दो शीर्षों (vertices) को मिलाने वाली रेखा (diagonal) के साथ साथ समकोण त्रिभुज की सबसे बड़ी भुजा (hypotenuse) के लिये भी प्रयोग किया जाता है (चित्र 7.12)। यह शब्द "कर्ण" धातु से बना है जिसका अर्थ "आर-पार छेदन करना" है।

शुल्बसूत्रों में त्रिभुजों तथा चतुर्भुजों (वर्ग, आयत, समलम्ब चतुर्भुज) से संबंधित अनेक रचनाएं दी गई हैं। अतः उनमें निहित (implied) बहुत से प्रमेयों के ज्ञात होने की बात मानी जा सकती है, भले ही उनका और उनकी उपपत्तियों का उल्लेख स्पष्ट रूप से

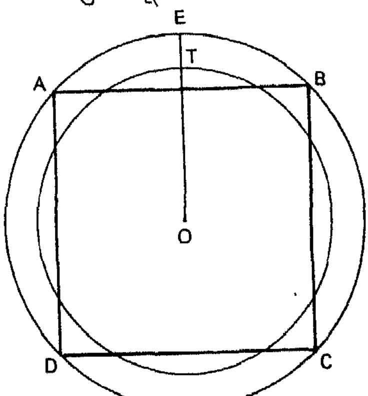


चित्र 7.12

सभी स्थितियों में न किया गया हो। उनकी शैली यूक्लिड (Euclid) की ज्यामितीय किताबों से भिन्न थी।

अभी हाल में ही *मानशुल्ब सूत्र* के संस्कृत में दिये गये नियम का सही अर्थ लगाकर इन पंक्तियों के लेखक ने प्राचीन भारत में प्रचलित π के एक नये मान को प्रकाश में लाया है। यह उस नियम में निहित है जिसके अनुसार एक दिये हुए वर्ग को अपने बराबर क्षेत्रफल के वृत्त में बदलने की बात कही गयी है। यह याद रखिये कि यह कार्य सरल पैमाने और कर्कट (pair of compass) से केवल आसन्न रूप में ही किया जा सकता है, पूर्णतया शुद्ध (exact) रूप में नहीं, क्योंकि π एक अबीजीय (non-algebraic) संख्या है।

मानव शुल्ब सूत्र के एक नियम के अनुसार दिये गये वर्ग ABCD का पहले परिवृत (circumcircle) खींचो। फिर ऊँचाई या उत्सेध OE का पंचम भाग ET छोड़कर शेष OT को त्रिज्या मान कर खींचा गया वृत्त ही अभीष्ट वृत्त होगा (चित्र 7.13)।



चित्र 7.13

माना कि भुजा AB=s, तो

$r = OT = (4/5)\, OE = (4/5) OA$

$= (2/5)\, AC = (2/5)\, \sqrt{2}\, s$

अब $\pi r^2 = s^2$ (वांछित रचना से)

अत: $\pi = (s/r)^2 = 25/8 = 3\frac{1}{8}$

जो कि अब तक के ज्ञात शुल्बसूत्र मानों में सर्वोत्तम है। विस्तृत जानकारी 1988 की *Centaurus* पत्रिका में है।

अध्याय 8

भारतीय जीवा की भ्रमण यात्रा

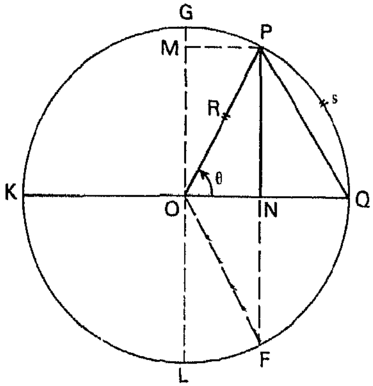
"आधुनिक त्रिकोणमितीय फलक ज्या (sine) के आदिस्वरूप का जन्म प्रत्यक्ष रूप से भारत में हुआ था, और ज्या का पुरःस्थापन भारतीय सिद्धान्त ग्रन्थों का गणित के इतिहास में प्रमुख योगदान है।"

– कार्ल बॉयर (गणित इतिहासज्ञ)।

वृत्त के अर्द्धव्यास को "त्रिज्या" यानी 'तीन ज्या' (Three sine) क्यों कहते हैं, इस प्रश्न का उत्तर गणित के इतिहास से अनभिज्ञ व्यक्ति कदापि नहीं दे सकता है।

इस अध्याय में त्रिकोणमिति की कहानी के अतिरिक्त गणित शब्दावली की बहुत-सी मजेदार बातों की चर्चा की जाएगी।

अंकों की दशमलव स्थान-मान प्रणाली भारत की विश्व को सबसे बड़ी देन है जिसकी कहानी तुम पिछले एक अध्याय में पढ़ चुके हो। विश्व गणित को भारत की दूसरी महत्वपूर्ण देन है ज्या फलक (Sine function) जिसके आविष्कार, प्रचार और विजययात्रा का वर्णन रोचक होने के साथ-साथ ज्ञानवर्धक भी है। कुछ ऐतिहासिक तथ्य तो ऐसे हैं जिनकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। चित्र 8.1 में यथेच्छ ज्यासार्ध का एक वृत है जिस पर Q कोई स्थिर बिन्दु है। P कोई भी बिन्दु है। यहाँ चाप PQ को s से निरूपित किया



चित्र 8.1

गया है।

प्राचीन गणित में P की स्थिति चाप s के द्वारा प्रदर्शित की जाती थी लेकिन चाप s की नाप उन्हीं इकाइयों में की जाती थी जिनमें उसके द्वारा केन्द्र O पर बने कोण θ की। निर्देश के रूप में वृत्त का हवाला देने का कारण आकाशीय पिण्डों का प्रत्यक्ष रूप से वृत्तीय कक्षाओं में भ्रमण था।

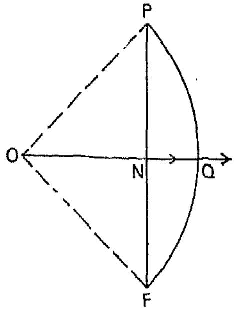
स्पष्ट है कि वृत्तीय चाप s की माप के ऊपर ही जीवा PQ (जो कि P तथा Q को मिलाने वाली सीधी रेखा है) की लम्बाई निर्भर करती है। आज से लगभग 2000 वर्ष पूर्व यूनान में एक ऐसी त्रिकोणमिति का चलन था जिसमें (पूर्ण) जीवा PQ को चाप s के फलक के रूप में प्रयोग किया जाता था। लेकिन बाद में भारतीय त्रिकोणमिति ने इसको गणित की दुनिया से उखाड़कर दूर फेंक दिया, ठीक वैसे ही जैसे भारतीय अंक प्रणाली ने संसार की अन्य प्रणालियों को दबा दिया।

भारतीयों ने ईसवी सन् के प्रारम्भ में कुछ भिन्न तरीके से त्रिकोणमितीय फलक की परिभाषा दी। P बिन्दु से अर्धव्यास OQ पर लम्ब PN खींचा गया तो PN को चाप s की (भारतीय) ज्या कहते हैं, और इस फलक को अंग्रेजी में R-sine या sine से निरूपित करते हैं, जिसे लिखते समय चलन के अनुसार आद्य अक्षर बड़ा (Capital) होता है।

यदि रेखा PN को बढ़ाया जाए तो वह वृत्त को F पर मिलेगी और हम देखेंगे कि चित्र PQFP की आकृति एक धनुष से मिलती-जुलती दिखेगी (देखें चित्र 8.2)।

धनुष-बाण प्राचीन काल में एक सामान्य हथियार था जिसका उल्लेख और वर्णन अनेक ग्रन्थों में पाया जाता है। साहित्यकारों ने भी सुन्दर उदाहरण या उपमाएँ देने में इस "हथियार" का उल्लेख किया है। भोजराज (ई. 11वीं सदी) रचित *सरस्वती-कंठाभरण* के एक प्राकृत पद्य का सुभाषित देखिए–

"हे पुत्री! धनुष के दण्ड में ही यह बात नहीं बल्कि मनुष्य के सम्बन्ध में भी यही



चित्र 8.2

बात है कि सुवंश (बांस और अच्छा वंश) में उत्पन्न होने पर भी गुण (रस्सी और गुण) रहित होने पर उसमें टंकार नहीं होती"।

गणितज्ञ भी कहेगा कि धनुषाकार क्षेत्र के लिये चाप या धनुष के साथ उसकी जीवा (डोरी या रस्सी) PF भी जरूरी है चित्र (8.2)। धनुष की डोरी के लिये संस्कृत में अनेक शब्द आये हैं जैसे ज्या, जिसका प्रयोग ऋग्वेद (VI.75.3) में हुआ है, जीवा, गुण, मौर्वी, शिंजिनी इत्यादि। चूंकि PN की लम्बाई PF की आधी है, इसलिये आविष्कृत नये त्रिकोणमितीय फलक (PN) को अर्धज्या या ज्यार्ध, अर्धजीवा या जीवार्ध इत्यादि कहते थे और स्पष्ट भेद प्रदर्शित करने के लिए PF को पूर्णज्या, पूर्णजीवा इत्यादि कहा जाता था। लेकिन प्रायः "अर्ध" शब्दांश को छोड़ दिया जाता था और कुछ समय बाद तो उसे बिल्कुल छोड़ ही दिया गया। इस प्रकार फलक को केवल ज्या, जीवा इत्यादि लिखने लगे। (आधुनिक समय में ज्या का अर्थ sine तथा जीवा का अर्थ Chord प्रचलित हो गया है।)

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय फलक

ज्या s = (पूर्णजीवा 2s)/2

यानी sine s = (chord 2s)/2 (1)

आधुनिक त्रिकोणमिति में जो ज्या (sine) फलक की परिभाषा दी जाती है वह एक समकोण त्रिभुज (Right angled triangle) के संदर्भ में दी जाती है। इसके लिए वृत्त या उसके चाप की कोई आवश्यकता नहीं होती। चित्र 8.1 में समकोण त्रिभुज OPN में कोण θ की आधुनिक ज्या (sine) की परिभाषा के अनुसार

$\sin\theta = PN/OP = (\text{sine } s)/R$

यानी sine s = R sine θ

वैसे चाप PQ की लम्बाई Rθ होगी, लेकिन हम बता चुके हैं कि प्राचीन समय में चाप s को भी कोण θ की तरह ही उसी की कोणीय इकाइयों में नापा जाता था अर्थात् s = θ होगा।

अतः sine θ = R sin θ (2)

जिससे पुरानी या मूल परिभाषा के अनुसार प्राप्त भारतीय ज्या sin θ और आधुनिक परिभाषा के अनुसार प्राप्त sin θ का सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है। सुविधा के लिए sin θ को कभी-कभी $\sin_R \theta$ से भी निरूपित करते हैं, अतः

$$\sin_R \theta = R \sin\theta \qquad (3)$$

अर्थात् $ज्या_R \theta = R$ ज्या θ

जहाँ ज्या R प्राचीन भारतीय ज्या निरूपित करता है। यह स्पष्ट है कि यदि R को इकाई लिया जाए तो प्राचीन और आधुनिक मान बराबर होंगे, हालांकि प्राचीन समय में ज्या θ एक लम्बाई थी और आज वह एक अनुपात है।

एक अचरज और मज़े की बात यह है कि वजन और लम्बाई नापने की इकाइयों में जो वैषम्य विश्व की विभिन्न प्राचीन सभ्यताओं में देखने को मिलता है वैसा वैषम्य कोण नापने की इकाइयों में नहीं था। षाष्ठिक (Sexagesimal) पद्धति का अनुसरण करके पूरे वृत्तीय चाप को 360 भागों में बांटा गया और यह प्रथा लगभग सभी देशों में प्रचलित थी, और आज भी प्रचलित है। 360 के चुनाव का क्या कारण था, इसमें मतभेद है। कुछ लोग इसे केवल मापीय सुविधा की बात मानते हैं (जैसी कि संख्या 60 को आधार लेने में होती है), तो अन्य विद्वान इसका आधार ज्योतिषीय आवश्यकता मानते हैं। ऐसा इसलिए कि सूर्य अपनी प्रत्यक्ष वृत्तीय कक्षा को एक वर्ष अर्थात् लगभग 360 दिनों में पूरा करता है।

प्राचीन ज्योतिष में सूर्य के प्रत्यक्ष कक्षावृत्त (orbit) या क्रान्तिवृत्त (ecliptic) को मेष, वृष, मिथुन इत्यादि 12 राशियों में विभाजित किया गया। इसी का अनुसरण करते हुए, किसी भी वृत्त के चाप को भी 12 बराबर भागों में बांटकर, प्रत्येक को राशि (sign) कहने लगे। इस प्रकार कोणीय माप के रूप में एक राशि 30 भाग या अंश (degree) को निरूपित करने लगी। इसके बाद का विभाजन तो नियमित रूप से षाष्ठिक है। भारतीय ज्योतिष और त्रिकोणमिति में संज्ञायें इस प्रकार थीं—

1 चक्र = 12 राशि (sign) = 12^r or 12^s

1 राशि = 30 अंश (degree) = 30^0

1 अंश (degree) = 60 कला या लिप्ता (minute) = $60'$

1 कला' = 60 विकला (second) = 60"

1 विकला = 60 तत्परा (third) = 60'''

1 तत्परा = 60 प्रतितत्परा (fourth) = 60'''' या 60^{iv}

अब हम एक रोचक बात बताते हैं। जब बिन्दु (चित्र 8.1 देखें) बढ़कर बिन्दु G पर पहुंचेगा तो भारतीय ज्या PN का मान GO अर्थात् व्यासार्ध R के बराबर हो जायगा। उस स्थान पर चाप s का मान वृत्त के चतुर्थांश GQ या तीन राशि होगा। अतः तीन राशि (यानी 90^0) की ज्या R के बराबर होगी।

अर्थात् त्रिराशिज्या = व्यासार्ध, R

बाद में त्रिराशिज्या को संक्षिप्त करके केवल "त्रिज्या" कहने और लिखने लगे। थोड़े और दिन बाद "त्रिज्या" शब्द का प्रयोग उसकी त्रिकोणमितीय बेड़ियों को तोड़कर, किसी भी वृत्त के व्यासार्ध (radius) के लिये किया जाने लगा। इस प्रकार एक मूल रूप में विशेष तकनीकी अर्थ रखने वाला शब्द एक सामान्य शब्द बन गया। जिन लोगों को इस शब्द के जन्म और पूर्वरूप की ज्योतिषीय तथा त्रिकोणमितीय पृष्ठभूमि नहीं मालूम वे इस बात का उत्तर नहीं दे पायेंगे कि आज ज्यामिति में किसी भी वृत्त के व्यासार्ध (Semidiameter) को "त्रिज्या" यानी "तीनज्या" या "तीन डोरी" या "तीन पृथ्वी" क्यों कहते हैं (संस्कृत में ज्या का एक अर्थ पृथ्वी भी होता है)।

वास्तव में आधुनिक "त्रिकोणमिति" शब्द अंग्रेजी शब्द "ट्रिगनोमेट्री" (Trigonometry) का शाब्दिक अनुवाद है। इस विषय का प्राचीन भारतीय नाम तो "ज्या गणित" अर्थात् ज्या (sine) पर आधारित गणित था। "ज्यामिति" शब्द इसी प्रकार अंग्रेजी शब्द "ज्योमेट्री" (Geometry) जो 'ज्यो' पृथ्वी और 'मेट्रोन' माप से बना है, का शाब्दिक अनुवाद है। प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में यह विषय "क्षेत्र व्यवहार" (क्षेत्रमिति) के अन्तर्गत आता था। ज्या को क्रमज्या भी कहते थे। इसके अतिरिक्त प्राचीन भारतीय त्रिकोणमिति में तीन अन्य फलकों का प्रयोग किया गया था। चित्र 8.1 में जहां PN का मान ज्या s है, वहीं PM या ON को चाप s की कोटिज्या (cosine) कहते थे, NQ को चाप s की उत्क्रमज्या (Versed sine) कहते थे, और GM को चाप s की कोटि-उत्क्रम ज्या (Coversed sine) कहते थे। कोटिज्या को संक्षेप में कोज्या कहते थे। चाप PG चाप PQ की कोटि (Complementary arc) कही

जाती थी।

उसी चित्र 8.1 से निम्नलिखित संबंध स्पष्ट है –

कोज्या θ = ज्या $(90^0 - \theta)$

उत्क्रम ज्या θ = R - कोज्या θ

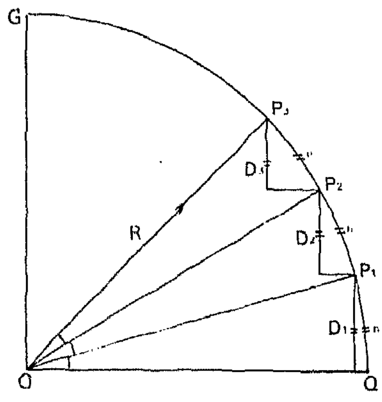
यानी $R \text{ vers } \theta = R - R \cos \theta$

जहां आधुनिक कोज्या θ या $\cos \theta$ की परिभाषा अनुपात ON/OP द्वारा दी जाती है। चित्र 8.3 में चाप GQ को n बराबर भागों में बांटा गया है, जिसमें से प्रत्येक का मान h है।

माना कि

$$D_r = \sin rh - \sin (r-1)h$$

जहाँ r का मान 1, 2, 3, ...n है। प्राचीन भाषा में D_1, D_2, D_3, ... इत्यादि को ज्याखण्ड कहते थे।



चित्र **8.3**

हम पायेंगे–

$$D_1 = \sin h$$

$$D_1 + D_2 = \sin 2h$$

$D_1 + D_2 + D_3 = \sin 3h$ इत्यादि।

दूसरी तरफ हम यह भी देख सकते हैं कि

$D_n = \text{Vers } h$

$D_n + D_{n-1} = \text{Vers } 2h$

$D_n + D_{n-1} + D_{n-2} = \text{Vers } 3h$ इत्यादि

अर्थात् यदि $D_1, D_2, D_3.....D_n$ को क्रम से जोड़ें तो हमें ज्याएं (sines) मिलेंगे, जिनको क्रमज्याएँ भी कहते थे।* लेकिन यदि इनको उत्क्रम यानी उल्टे क्रम से जोड़ें तो उत्क्रमज्याएँ (Versed sines) प्राप्त हो जायेंगे। इससे "उत्क्रमज्या" के नामकरणका कारण स्पष्ट हो गया। इस फलन को प्रायः इषु या बाण (arrow) भी कहते थे क्योंकि NQ चाप PF के लिए तीर की तरह था (चित्र 8.2 देखें)। मूल परिभाषाएँ भिन्न होने पर भी यदि निर्देश वृत्त की त्रिज्या R का मान 1 हो तो किसी भी चाप या कोण की प्राचीन

ज्या (sine), कोज्या (Cosine) इत्यादि का मान वही होगा जो आधुनिक ज्या (sine) कोज्या (Cosine) इत्यादि का होगा। लेकिन कम से कम एक बात में पुरानी परिभाषा नई से अच्छी है। यदि कोण θ का मान 90^0 लिया जाए तो पुरानी परिभाषा से कोई अड़चन नहीं आती, और आसानी से

$\sin 90^0 = GO = R$

$\cos 90^0 = 0$

$\text{vers } 90^0 = OQ = R$

तथा $\text{coverse } 90^0 = 0$

मिल जाते हैं। लेकिन आधुनिक फलनों के मान निकालने में सीमान्त (limiting) रीति का सहारा लेना पड़ता है, क्योंकि जब कोण θ का मान (चित्र 8.1 देखें) 90^0 हो तो त्रिकोण PON बनेगा ही नहीं; और जब त्रिकोण नहीं होगा तो PN/OP तथा ON/OP के मान निकालने का प्रश्न ही नहीं उठता।

अब हम ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित एक ऐसी बड़ी मजेदार और अपने में रहस्यमयी बात का संक्षिप्त विवरण देते हैं जैसी इतिहास में बहुत कम देखने को मिलती है।

जब भारतीय गणित ज्योतिष के एक ग्रन्थ का बगदाद में (ई. 8वीं सदी) संस्कृत से अरबी भाषा में अनुवाद किया जा रहा था, तो अनुवादकों के समक्ष एक समस्या आई। वह थी भारतीय ज्या या जीवा (Sine) को अनुवाद करने की, क्योंकि वह भारत का नया आविष्कार था और उनके यहाँ ऐसी कोई संकल्पना (concept) नहीं थी। किसी नये शब्द के गढ़ने का खतरा मोल न लेकर उन्होंने संस्कृत जीवा शब्द को ही अपना लिया (जैसे हमने विदेशी शब्द "रेडियो" को अपना लिया है)। अरबी भाषा (जिसकी लिपि उर्दू से मिलती जुलती है और दायें से बायें पढ़ी जाती है) में जीवा को उन्होंने अपने अनुवादों में इस तरह से लिखा

جيب

(J-Y-B) या (ज-य-ब)

इसे "जीब", जैब इत्यादि पढ़ा जा सकता है। लेकिन उपर्युक्त तकनीकी आशय को छोड़कर ये सब अरबी भाषा में निरर्थक शब्द थे। फिर भी उस भाषा के लचीलेपन के कारण, उल्लेखित व्यंजनों को मिलाकर "जेब" भी पढ़ा जा सकता था और हुआ भी ऐसा ही। बाद में पढ़ने वालों ने जानबूझ कर या भ्रमवश, उसे जेब ही समझ लिया जिसका अर्थ

जेब (pocket), पोल (cavity or hollow), इत्यादि होते हैं।

भारतीय ग्रन्थ का जो अरबी भाषा में अनुवाद हुआ था उसका नाम "सिन्दहिन्द" (Sindhind) था। बाद में इस पर आधारित अन्य कई ग्रन्थों की रचना अरबी भाषा में हुई जिनका प्रचार पूर्व से लेकर पश्चिम (स्पेन) तक उस समय की सारी इस्लामी दुनिया में हुआ। बाद में स्पेन में (ई. 12वीं शताब्दी) इन अरबी ग्रन्थों का जब लैटिन (Latin) भाषा में अनुवाद हुआ तो अनुवादकों ने उस तकनीकी शब्द "जैब" या 'जेब' का लैटिन शब्द "साइनस" (sinus) में रूपान्तर कर दिया, क्योंकि इस शब्द का अर्थ भी "जेब" (pocket), पोल (cavity) इत्यादि होता है। थोड़े दिन बाद अंग्रेजी तथा यूरोप की अन्य भाषाओं में इसका "साइन" (Sine) के रूप में प्रचार और प्रसार हो गया। इसी बीच परिभाषा में सुधार हुआ लेकिन नाम वही रहा।

भारत में अंग्रेजी शासनकाल में जब नयी पश्चिमी शिक्षा का प्रचार हुआ तो आधुनिक त्रिकोणमिति में यही "साइन" (sine), कोसाइन (Cosine) इत्यादि फलक पश्चिमी शिक्षा के नाम पर पश्चिमी पाठ्य पुस्तकों से भारतीय विद्यार्थियों को पढ़ाये जाने लगे। जब हिन्दी तथा अन्य क्षेत्रीय भाषाओं में पश्चिमी शिक्षा पर आधारित आधुनिक गणित की पुस्तकें लिखी गई तब साइन (sine), कोसाइन (Cosine) की जगह फिर "ज्या", 'कोज्या' इत्यादि उभर आये।

इस प्रकार एक मूल भारतीय तकनीकी शब्द "जीवा" (जो ज्या का पर्यायवाची है), पश्चिमी एशिया, स्पेन, इंगलैण्ड आदि का भ्रमण करके लगभग 1000 वर्ष बाद रूप बदलकर "साइन" (sine) के नाम से भारत आया। शब्द की काया इतनी ज्यादा पलट चुकी थी कि ऊपर कही गयी सच्ची कहानी जाने बिना कौन पहचान सकता है कि अंग्रेजी का "sine" (साइन) अपने किसी पूर्व जन्म में भारतीय "जीवा" था। इस तरह एक साधारण शब्द साइन (sine) गणित का तकनीकी शब्द बन गया, अन्यथा उसका कोई गणितीय अर्थ नहीं है।

भारतीय जीवा की यह भ्रमण-यात्रा जितनी रोचक और मनोरंजक है उतनी ही ज्ञानवर्धक है। विश्व में वैज्ञानिक संकल्पनाओं (concepts) और ज्ञान की विभिन्न सभ्यताओं के बीच आदान-प्रदान की ऐसी विचित्र कथायें लोगों का ध्यान विज्ञान के ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और अन्य मानवीय पक्षों की ओर आकर्षित करती हैं। ऊपर की कहानी से यह भी स्पष्टतया

चित्रित होता है कि हमारी गणितीय विरासत बहुत व्यापक है। एक अन्य बात भी स्पष्ट है कि भारतीय दशमलव स्थान-मान प्रणाली की तरह, भारत की त्रिकोणमिति का ज्ञान यूरोपवालों को अरबों के माध्यम से प्राप्त हुआ था।

भारतीय त्रिकोणमिति के दो मूल फलक थे क्रमज्या (Direct Sine) तथा उत्क्रमज्या (Reversed sine)। जब अरबी माध्यम से ये लैटिन भाषी लोगों के पास पहुँचे तो इनके नाम "साइनस रेक्टस" (Sinus Rectus) तथा "साइनस वरसस" (Sinus Versus) कहलाने लगे जिनका शाब्दिक अर्थ हूबहू वही है जो संस्कृत शब्द क्रमज्या तथा उत्क्रमज्या का। उदाहरण के लिए फीबोनाट्‌ची ने अपने ग्रन्थ *Practica Geometriac* (1220 ई०) तथा रेजिओमोन्टेनस ने अपने ग्रन्थ *Tabulae Directionum* (1475 ई) में उन शब्दों का प्रयोग किया है।

यह भी स्पष्ट है कि परिभाषा के अनुसार 90^0 की ज्या का मान सबसे अधिक है और वह वृत्त के पूरे व्यासार्ध के बराबर है। किसी अन्य कोण की ज्या का मान व्यासार्ध के किसी भाग या अंश के बराबर ही हो सकता है। इसीलिए 90^0 की ज्या यानी त्रिज्या को परमज्या (Greatest Sine) भी कहते थे। भास्कर प्रथम (ई. 7वीं सदी) ने इसे सकल गुण (Total Sine) की संज्ञा दी है। बाद में अरबी भाषी लोगों ने ठीक उसके शब्दार्थ रूप "जीब अल कुल" अर्थात् कुल ज्या (Total Sine) का प्रयोग किया और बाद में यूरोप में उस समय की बहु प्रचलित लैटिन भाषा में इसी को "साइनस टोटस" (Sinus Totus) कहा जिसका शाब्दिक अर्थ वही है जो संस्कृत के 'सकलगुण' का। यूरोपीय गणितज्ञ रेजियोमोन्टेनस (Regiomontanus) (1475 ई.) एपियन (Apian) 1541 ई.), मोरोलिको (Maurolico) (1555 ई.), वीटा (Vieta) (1579 ई.), रेटिकस (Rheticus) (1596 ई.), क्लेवियस (Clavius) (1660 ई.) आदि वे लेखक हैं जिन्होंने साइनस टोटस का प्रयोग किया है।

पाठकों के मन में एक प्रश्न अवश्य उठता होगा। वह यह कि निर्देशवृत्त का व्यासार्ध R कितना था? इसका उत्तर यही है कि भारत और विदेशों में R के छोटे-बड़े अनेक मान लिये गये थे। भारत में सबसे लोकप्रिय और मानक मान था 3438 कला।

इसे इस प्रकार प्राप्त किया गया था। प्राचीन भारतीयों ने (जैसे आर्यभट प्रथम) वृत्त की परिधि C को भी कोणीय इकाइयों में निरूपित किया, अर्थात् C का मान 360^0 या 21600

कला इत्यादि लिया। फिर

$$R = C/2\pi$$

सूत्र लगाकर R का मान प्राप्त किया। आर्यभट प्रथम ने π का आसन्न मान 3.1416 लिया है (अध्याय 9 देखें)।

अतः

$$R = \frac{21600}{6.2832} = 3437' 44'' = 3437.73 \text{ कला लगभग}$$

वटेश्वर (904 ई.) और परमेश्वर (1408 ई.) ने यही मान दिया है। यदि निकटतम कला तक का मान ही ग्रहण किया जाये तो, R = 3438 कला मिल जाता है। यह मान सूर्य सिद्धांत के अतिरिक्त आर्यभट प्रथम (जन्म 476 ई.), भास्कर प्रथम (7वीं ई.), लल्ल (8वीं सदी) तथा भास्कर द्वितीय (12वीं सदी) इत्यादि के ग्रन्थों में प्रयुक्त हुआ। सुविधा और सूक्ष्मता के लिये जो अनेक अन्य मान भारत में लिये गये थे उनमें से 60, 120, 150, 200, 500, 1000, 3600, तथा 12375859 (तत्परा) आदि सम्मिलित हैं।

भारतीय ज्योतिष और त्रिकोणमिति के ज्ञान का प्रसार जब विदेशों में हुआ तो उसके साथ कुछ R के मान भी भारत से वहाँ पहुंचे। इनमें से मुख्य थे 3438 जो इस्लामी दुनिया के अलावा चीन में भी पहुंचा (अध्याय 10 देखें), तथा 150 जिसका प्रयोग भारत में ब्रह्मगुप्त (628 ई.) द्वारा किया गया था। विदेश में यह 150 मान अल-फजारी (ल.750 ई.), यकूब इब्न तारिक (8वीं सदी), अलख्वारिजमी (9वीं सदी), अबूमशर (ल. 850 ई.), स्पेन के अल-जरकाली (11वीं सदी), इत्यादि द्वारा प्रयोग में लाया गया। 15वीं सदी की एक पाण्डुलिपि जो न्यूमिनिस्टर (New-minister) इंगलैण्ड में पाई गई, में भी इस भारतीय मान 150 का प्रयोग हुआ है।

भारतीय ज्यागणित अर्थात् त्रिकोणमिति की बहुत-सी प्रारम्भिक बातों की चर्चा अगले अध्याय में की जायेगी। यहाँ भास्कर प्रथम ने 7वीं शताब्दी के प्रारम्भ में जो एक विलक्षण सूत्र दिया है, उसे यहाँ नमूने के रूप में बताये बिना नहीं रहा जाता। इससे, बिना किसी सारणी के, किसी भी कोण की ज्या का आसन्न मान प्राप्त किया जा सकता है। 'महा भास्करीय के 7वें अध्याय में नियम इस प्रकार वर्णित है—

चक्रार्धांशक समूहाद्विशोध्या ये भूजांशकाः ।। 17 ।।
तच्छेषगुणिता द्विष्ठाः शोध्याः खाभ्रेषुखाब्धितः ।
चतुर्थांशेन शेषस्य द्विष्ठमन्त्यफलाहतम् ।। 18 ।।
बाहुकोट्योः फलंकृत्स्नं क्रमोत्क्रमगुणस्यवा ।

अर्थात् , "दिये हुए भुज (चाप या कोण) के अंशों को आधे चक्र के अंशों (यानी 180^0) में से घटाओ। शेष को भुज से गुणा करके फल को दो जगह रखो। एक जगह रखें फल को खाभ्रइषुखाब्धि (यानी 40500) में से घटाओ और शेष के चौथाई भाग से दूसरे स्थान पर रखे हुए फल और अन्त्यफल (यानी त्रिज्या) के गुणनफल को भाग दो। इस प्रकार भुज की ज्या प्राप्त होती है, इत्यादि।"

मान लो चाप या कोण A अंश है । तो पहले A(180–A) निकालने को कहा गया है। मान लो यह B है। तो फिर (40500–B)/4 से RxB को विभाजित करने से R sin A मिलेगा।

अर्थात् $R \sin A = 4RB / (40500-B)$

यानी $\sin A = \dfrac{4A\,(180-A)}{40500-A\,(180-A)}$

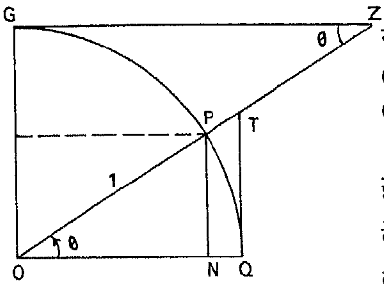
बीजातीत (Transcendental) फलक sin A या ज्या A का इस प्रकार एक सरल और सन्निकट परिमेय निरूपण करना उस समय के लिये आशातीत उपलब्धि थी। बाद में यह सूत्र भारत में बहुत लोकप्रिय हुआ, परन्तु अन्य सभ्यताओं के गणित में इस तरह का नियम दुर्लभ था। सूत्र की उपयोगिता को आंकने के लिये संलग्न तालिका देखिये जिसमें उसके द्वारा प्राप्त मानों की तुलना आधुनिक मानों से की गयी है।

कोण A	सूत्र से ज्या A	आधुनिक मान
0^0	0.000	0.000
10^0	0.175	0.174
20^0	0.343	0.342
30^0	0.500	0.500

40^0	0.642	0.643
50^0	0.765	0.766
60^0	0.865	0.866
70^0	0.939	0.940
80^0	0.985	0.985
90^0	1.000	1.000

भारतीय त्रिकोणमिति में अनेक इस प्रकार के सुन्दर मोती हैं जिनका वर्णन करना यहां सम्भव नहीं है । वास्तव में त्रिकोणमिति का विकास ज्योतिष के लिये किया गया था। अतः तद्विषयक सामग्री ज्योतिष के ग्रन्थों में भरी पड़ी है। ज्योतिषीय आधार होने के कारण ही गोलीय (spherical) त्रिकोणमिति का विकास सरल (plane) त्रिकोणमिति से पहले हुआ जो कि विज्ञान के इतिहास से अनभिज्ञ लोगों के लिए एक विचित्र बात थी।

इस अध्याय को समाप्त करने से पूर्व कुछ शिक्षा सम्बन्धी बातों की चर्चा करते हैं। त्रिकोणमिति में कुछ वर्षों पूर्व तक उत्क्रमज्या और कोटि-उत्क्रमज्या फलक पढ़ाए जाते थे, लेकिन आजकल इनका रिवाज प्रायः समाप्त सा हो गया है। अब जो मूल फलक पढ़ाये जाते हैं, उनकी परिभाषा कभी-कभी अनुपात के स्थान पर इकाई वृत्त में लम्बाई या निर्देशांकों (coordinates) के रूप में दी जाती है (ज्या और कोज्या के लिये)। मानो प्राचीन भारतीय त्रिकोणमिति के मूल स्वरूप की एक झाँकी का दर्शन होने लगा हो। इसलिये आधुनिक सभी 6 फलकों का ज्यामितीय निरूपण जानना शिक्षाप्रद होगा। इसे चित्र 8.4 में प्रदर्शित किया गया है (वृत्त की त्रिज्या एक है) ।



चित्र 8.4

यहाँ $PN = \sin\theta$; $ON = \cos\theta$

$QT = \tan\theta$; $OT = \sec\theta$

$GZ = \cot\theta$; $OZ = \operatorname{cosec}\theta$

चित्र में TQ स्पर्श रेखा (Tangent line) और TO छेदन रेखा (Secant line) है। लेकिन PN($=\sin\theta$) के लिये ऐसी ही कोई व्याख्या नहीं है, क्योंकि उसकी तो अपनी अलग विचित्र कहानी है जो इस अध्याय में विस्तार से बताई गई है।

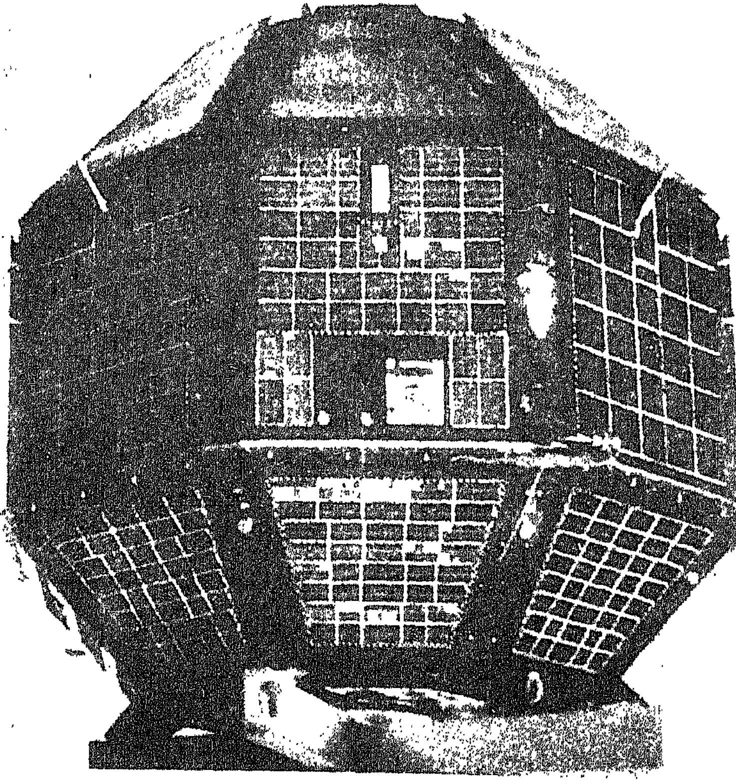
अध्याय 9

प्राचीन भारत के महान गणितज्ञ आचार्य आर्यभट

भारत के इतिहास में 19 अप्रैल, ई. सन् 1975 का दिन सदैव स्वर्णाक्षरों में लिखा जायेगा। यह वह महत्वपूर्ण दिन था जब भारत का प्रथम कृत्रिम भू-उपग्रह, जिसका निर्माण पूर्णतया भारतीय प्रौद्योगिकी द्वारा किया गया था, अन्तरिक्ष में छोड़ा गया। उसके साथ ही हमारे देश में अन्तरिक्ष विज्ञान के एक नये युग का सूत्रपात हुआ।

इस प्रथम भारतीय कृत्रिम भू-उपग्रह का नाम था "आर्यभट"। लगभग 200 भारतीय युवा वैज्ञानिकों ने उसे केवल ढाई वर्ष में तैयार किया था। इसकी अभिकल्पना (design) में सैकड़ों गणितीय सूत्रों और समीकरणों का प्रयोग किया गया था। बाद में छोड़ने के लिए उसे रूस ले जाया गया था। वहाँ पर स्थित कपुस्तिन-यर कोस्मोड्रोम से एक रूसी राकेट द्वारा "आर्यभट" को कक्षा में स्थापित कर दिया गया था।

आर्यभट उपग्रह का भार 358 किलो ग्राम था, और उसकी वृत्ताकार कक्षा की दूरी पृथ्वी की सतह से 600 किलोमीटर थी। उस समय तक विश्व के किसी भी देश द्वारा छोड़े गये प्रथम भू-उपग्रह में आर्यभट का वजन सबसे अधिक था। उसमें संयुक्त विभिन्न यन्त्रों का वर्णन करना यहाँ संभव नहीं है (फिर भी इतना तो जान लो कि उपग्रह को उसमें जड़े 17000 सूर्यसेलों (Solar Cells) द्वारा धूप को विद्युत में



चित्र 9.1 आर्यभट भू-उपग्रह

बदलने से मिलती थी)।

प्राचीन भारतीय खगोलविदों की अन्तरिक्ष में रुचि थी। ब्रह्माण्ड सौरमण्डल, तथा भूमण्डल सम्बंधी बहुत-सी बातों का प्राचीन साहित्य में उल्लेख है।

"आर्यभट" के सफल अभियान से भारतीयों को अपार हर्ष हुआ था। वैज्ञानिकगण तो अपने को काफी गौरवान्वित महसूस कर रहे थे। उस अवसर पर डाक विभाग ने 25 पैसे वाला स्मारक टिकट जारी किया था, जिसपर "आर्यभट" भू-उपग्रह का चित्र अंकित था। रिजर्व बैंक द्वारा जारी किये गये दो रुपये के वे नोट तो तुमने देखे ही होंगे जिनपर उस उपग्रह का चित्र. है।

लेकिन उपग्रह का नाम "आर्यभट" क्यों रखा गया ? अर्थात् यह "आर्यभट" कौन था जिसके नाम पर भू-उपग्रह का नामकरण किया गया। इस अध्याय में हम प्राचीन भारत के उसी महान गणितज्ञ और खगोलविद् के विषय में बतलायेंगे जिसे आर्यभटाचार्य या आर्यभट प्रथम कहते हैं। आचार्य आर्यभट ने भारतीय ज्योतिष के विकास में बहुत बड़ा योगदान किया है, इसलिए उनके नाम पर भूउपग्रह का नाम "आर्यभट" रखना सर्वथा उचित था।

आर्यभट का काल और स्थान

दुर्भाग्य की बात है कि आर्यभट जैसे महान गणितज्ञ और ज्योतिषी के विषय में हमें पूरी जानकारी नहीं है। उनके माता-पिता और गुरु कौन थे, उन्होंने कहाँ शिक्षा पाई आदि प्रश्नों के उत्तर देने में हम बिल्कुल असमर्थ हैं। उनकी ख्याति मुख्यतः उनके रचित आर्यभटीय ग्रन्थ पर निर्भर करती है, जिसके नामकरण में भी उन्होंने अपने वंश, जीवन, पढ़ाई, इत्यादि के विषय में कुछ नहीं लिखा। व्यक्तिगत जीवन से संबंधित केवल एक या दो बातों की जानकारी हमें इस ग्रन्थ से मिलती है। परन्तु भाषा स्पष्ट न होने से इन बातों के बारे में कुछ मतभेद या भ्रम हैं।

अपने काल के बारे में आर्यभट ने आर्यभटीय के कालक्रियापाद के दसवें श्लोक (आर्याछन्द) में लिखा है कि—

"षष्ट्यब्दानां षष्टिर्यदा व्यतीतास्त्रयश्च युगपादाः।
त्र्यधिका विंशतिरब्दास्तदेह मम जन्मनोऽतीताः।। 10।।"

अर्थात्

"साठ-साठ वर्षों की साठ अवधियाँ तथा महायुग के तीन पाद जब व्यतीत हो गये तब मेरे जन्म से 23 वर्ष हो चुके थे"।

यानी, महायुग के सत्य, त्रेता और द्वापर युगों के व्यतीत हो जाने के बाद कलियुग के भी 3600 वर्ष व्यतीत हो गये, तब आर्यभट की आयु 23 वर्ष की थी। भारतीय ज्योतिष में कलियुग का प्रारम्भ ई.पू. 3102 सन् में हुआ था। इसलिए आर्यभट ई. सन् 499 में 23 वर्ष के थे। अतः उनका जन्म ई. सन् 476 में हुआ था। चूंकि उन्होंने अपनी आयु की गणना पूर्ण वर्षों में लिखी है, इसलिए वर्ष के अन्त या प्रारम्भ में उनका जन्म हुआ होगा, ऐसा कुछ विद्वान मानते हैं। अतः सूक्ष्मगणना करने पर उनका जन्मदिन रविवार, 21 मार्च ई. सन् 476 आता है। विश्व के इतिहास में यह वर्ष बहुत महत्वपूर्ण है। जब महान रोमन साम्राज्य का अन्त हुआ था। भारत में भी गुप्तवंश के राजा बुद्धगुप्त का राजधानी पाटलिपुत्र में इसी वर्ष राज्यतिलक हुआ था।

एक बात ध्यान देने की है। ऊपर लिखे श्लोक का अनुवाद करते समय मूल श्लोक में आये "इह" शब्द को छोड़ दिया गया है। ऐसा करने में यह समझ लिया गया है कि "इह" का प्रयोग केवल श्लोक की पूर्ति के लिये किया था। लेकिन कुछ टीकाकार और आधुनिक विद्वानों ने "इह" को ग्रन्थ लिखने के समय का सूचक माना है। अर्थात् इस मत के अनुसार आर्यभट ने 23 वर्ष की आयु में (यानी ई. सन् 499 में) *आर्यभटीय* की रचना की। लेकिन कुछ विद्वानों ने *आर्यभटीय* में दिए गए ज्योतिषीय आंकड़ों के सांख्यिकी विश्लेषण से सिद्ध किया है कि *आर्यभटीय* की रचना ई. सन् 510 के आसपास हुई थी।

आर्यभट के जन्म स्थान के बारे में भी बहुत मतभेद हैं। देश के अनेक प्रदेशों ने अपने अपने दावे पेश किये हैं, पर कोई निश्चित निर्णय नहीं निकला है।



चित्र 9.2 आर्यभट की मूर्ति (बिरला प्लेनेटोरियम, कलकत्ता के सौजन्य से)

आर्यभटीय गणितपाद का प्रथम आर्या श्लोक (मंगलाचरण) इस प्रकार है–

ब्रह्मकुशशिबुध भृगुरविकुज गुरु कोण भगणान्नमस्कृत्य।
आर्यभटस्त्विह निगदति कुसुमपुरेऽभ्यर्चितं ज्ञानम् ॥ 1 ॥

अर्थात्

"ब्रह्मा, पृथ्वी, चन्द्र, बुध, शुक्र, सूर्य, मंगल, बृहस्पति, शनि तथा नक्षत्रगणों को नमस्कार करके आर्यभट यहाँ कुसुमपुर में पूजित ज्ञान का वर्णन करता है।"

अधिकतर टीकाकार और विद्वान कुसुमपुर का अर्थ पाटलिपुत्र (आधुनिक पटना) नगर लगाते हैं, क्योंकि पाटलिपुत्र को पहले कुसुमपुर भी कहते थे। इस पर काफी सहमति है, हालाँकि कुसुमपुर नाम से पुकारे जाने वाले कुछ अन्य नगर भी थे, जैसे आजकल के कन्नौज़ नगर को भी पहले कुसुमपुर कहते थे।

आर्यभट के कुसुमपुर को उल्लेख करने के कारण कुछ विद्वान उसको उनका जन्मस्थान और कुछ केवल शिक्षा ग्रहण का स्थान मानते हैं। लेकिन ऐसी कोई बात आर्यभट ने स्पष्ट रूप से नहीं कही है। इस आर्या में भी फिर "इह" (यहाँ) शब्द आया है। यदि उसका अर्थ "इस स्थान" (कुसुमपुर) में लें तो स्पष्ट है कि आर्यभट ने कुसुमपुर में रहकर ग्रन्थ की रचना की। लेकिन यदि "इह" का अर्थ "इस ग्रन्थ में" लें तो उनका कुसुमपुर निवासी होना सिद्ध नहीं होता।

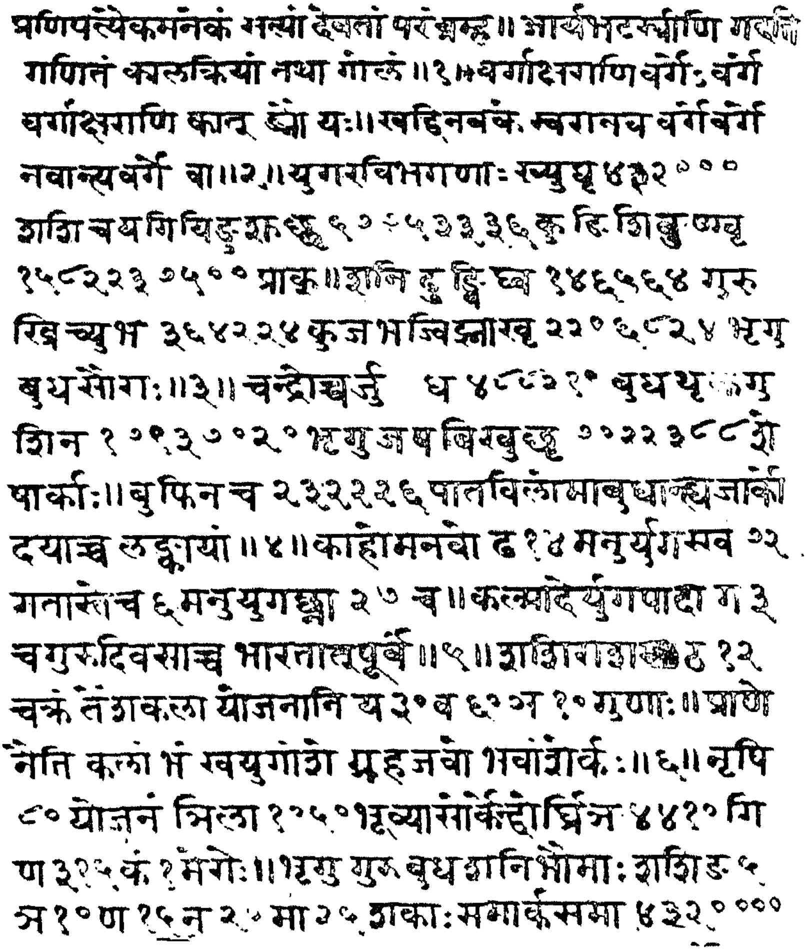
पाटलिपुत्र गुप्तवंशी राजाओं की राजधानी थी। उनके शासन काल को भारत के इतिहास का एक स्वर्णिम युग कहा जाता है, जिसमें देश ने साहित्य, कला, विज्ञान, आदि सभी क्षेत्रों में बहुत प्रगति की थी। पाटलिपुत्र तो विद्या का एक बड़ा केन्द्र था। अधिकतर विद्वानों की यही मान्यता है कि आर्यभट ने इस विद्यानगरी में रहकर ही ज्ञान प्राप्त किया और उस पर पुस्तक लिखी, भले ही उनका जन्म वहाँ न हुआ हो।

इस संबंध में एक प्राचीन श्लोक जिसका रचियता अज्ञात है, इस प्रकार है–

सिद्धान्तपञ्चकविधावपि दृग्विरुद्ध-
मौढ्योपरागमुखखेचरचारक्लृप्तौ।
सूर्यः स्वयं कुसुमपुर्यभवत् कलौ तु
भूगोलवित् कुलप आर्यभटाभिधानः।।

अर्थात्

"जब पाँच ज्योतिष सिद्धान्तों में दी गई विधियों से निकाले गये फलों का वेध किये



प्रणिपत्यैकमनेकं सत्यां देवतां परं ब्रह्म ॥ आर्यभटस्त्रीणि गदति
गणितं कालक्रियां तथा गोलं ॥१॥ वर्गाक्षराणि वर्गे ऽवर्गे
ऽवर्गाक्षराणि कात् ङ्मौ यः ॥ खद्विनवके स्वरा नव वर्गेऽवर्गे
नवान्त्यवर्गे वा ॥२॥ युगरविभगणाः ख्युघृ ४३२००००
शशि चयगियिङुशुछ्लृ ५७७५३३३६ कु ङिशिबुण्लृख्षृ
१५८२२३७५०० प्राक् ॥ शनि ढुङ्विघ्व १४६५६४ गुरु
ख्रिच्युभ कुज भद्लिझ्नुखृ २२९६८२४ भृगु
बुधसौराः ॥३॥ चन्द्रोच्चर्जुष्खिध ४८८२१९ बुध
शिन भृगु जषबिखुछृ शेषार्काः ॥ बुफिनच पातविलोमा बुधाह्न्यजार्को
दयाच्च लङ्कायां ॥४॥ काहो मनवो ढ १४ मनुयुगश्ख ७२
गतास्ते च ६ मनुयुगछ्ना २७ च ॥ कल्पादेर्युगपादा ग ३
च गुरुदिवसाच्च भारतात्पूर्वं ॥५॥ शशिराशयष्ठ १२
चक्रं तेंऽशकला योजनानि य ३० व ६० ञ १० गुणाः ॥ प्राणे
नैति कलां भं खयुगांशे ग्रहजवो भवांशोऽर्कः ॥६॥ नृषि
८० योजनं भिला १२५० भूव्यासोऽर्केन्दोर्घ्रिञ्जा ४४१० गि
ण ३१५ कं १ मेरोः ॥ भृगु गुरु बुध शनि भौमाः शशि ङ ५
ञ १० ण १५ न २० मा २५ शकाः समार्कसमा ४३२००००

चित्र 9.3 आर्यभटीय की हस्तलिपि का प्रारंभिक अंश

गये ग्रहों और ग्रहणों से विरोध होने लगा, तब सूर्य देव ने स्वयं कलियुग में (कुसुमपुर में) भूगोलविद कुलपति आर्यभट के रूप में जन्म लिया।"

संभव है कि आर्यभट का जन्म, अध्ययन और अध्यापन कुसुमपुर (यानी पटना) में ही हुआ हो। ऐसा प्रतीत होता है कि बाद में वे पटना छोड़कर दक्षिण की ओर चले गये थे, क्योंकि गुप्तराजाओं का वैभव घटने लगा था।

अन्य मतों के अनुसार आर्यभट का जन्म स्थान गोदावरी और नर्मदा के बीच स्थित अश्मक जनपद था। लेकिन त्रावनकोर का एक प्राचीन नाम भी अश्मक था। एक मत से कोदुन्गलूर (केरल) को उनका स्थान माना गया है। केरल का दावा एक अन्य आधार पर भी बनता है। आर्यभट के अनेक अनुयायी, टीकाकार, केरल के थे। वहाँ उनके ग्रन्थ *आर्यभटीय* की अनेक पांडुलिपियाँ भी पाई गई हैं। लेकिन जैसा हम ऊपर लिख चुके हैं, यह सब शायद आर्यभट के पटना छोड़ने के बाद हुआ था। परन्तु अन्य विद्वानों की राय में केरल में जन्म और प्रारम्भिक शिक्षा के बाद आर्यभट राजकीय प्रोत्साहन के लिए पटना चले गये थे।

आर्यभटीय में करीब 120 श्लोक या छन्द हैं जो चार भागों में विभक्त हैं– दशगीतिका पाद, गणित पाद, कालक्रियापाद, और गोलपाद। बहुत से सूत्रों की भाषा संक्षिप्त होने से इतनी क्लिष्ट है कि नियम समझ में नहीं आते हैं। पाठकों की यह कठिनाई बहुत पहले से ही चली आ रही है। उदाहरण के लिए, 19वीं शताब्दी के तेलुगु टीकाकार कोदण्डराम के अनुसार *आर्यभटीय* "वज्रमय पर्वतादपि कठिनतर" है। वास्तव में यदि प्राचीन टीकाएँ उपलब्ध न होतीं तो और ज्यादा कठिनाइयों का सामना करना पड़ता।

आर्यभटीय के पहले आर्यभट एक अन्य ग्रन्थ *आर्धरात्रिक तन्त्र* लिख चुके थे, वह लुप्त हो गया है। केवल उसके कुछ अंश बाद के ग्रन्थों में उद्धृत पाये जाते हैं। इसमें दिन का प्रारम्भ आधी रात से माना गया था, जबकि *आर्यभटीय* में सूर्योदय से जो कि भारतीय ज्योतिष की परम्परा है। आर्यभट को कुछ मुक्तक छन्दों का भी कर्ता माना गया है।

आर्यभट का गणित

सबसे पहले हम आर्यभट की उस अनुपम अक्षर संख्या प्रणाली का उल्लेख करेंगे जिसका

आविष्कार उन्होंने स्वयं किया था। उसका प्रयोग करके बहुत बड़ी संख्याएँ भी संक्षिप्त रूप में लिखी जा सकती हैं। इस प्रणाली में संस्कृत (नागरी) वर्णमाला के 33 व्यंजनों को 9 स्वरों की मदद से विभिन्न संख्याओं को निरूपित करने में लगा देते हैं। स्वरों को अपना कोई संख्यात्मक मान इस पद्धति में नहीं दिया गया है और ह्रस्व तथा दीर्घ स्वरों में कोई अन्तर नहीं माना गया है। संयोग होने पर कौन स्वर कितना गुणनात्मक मान संयुक्त व्यंजनों को देगा वह इस प्रकार है–

स्वर	*प्रदत्त मान/मूल्य*
अ, आ	1
इ, ई	100
उ,ऊ	100^2
ऋ, ॠ	100^3
लृ	100^4
ए	100^5
ओ	100^6
ऐ	100^7
औ	100^8

व्यंजनों में जो प्रथम 25 वर्गाक्षर (क से म तक) हैं वे क्रमशः 1 से 25 संख्या निरूपित करते हैं। उसके बाद के 8 अवर्गाक्षर (य से ह तक) क्रमशः 30, 40, 50, 60, 70, 80, 90, और 100 निरूपित करते हैं।

इन सब 33 अक्षरों के लिखने में स्वर "अ" का संयोग है। दूसरे स्वरों के संयोग होने पर ऊपर की तालिका के अनुसार मान बढ़ते जायेंगे। जैसे व्यंजन ग से निम्नलिखित संख्याएँ बनाई जा सकती हैं:

ग, गा, ... $3 \times 1 = 3$

गि, गी .... $3 \times 100 = 300$

गु, गू .... $3 \times 100^2 = 30000$

गृ .... 3×100^3

ग्लृ .... 3×100^4

गे .... 3×100^5

गो .... 3×100^6

गै .... 3×100^7

गौ .... 3×100^8

यौगिक (Compound) अक्षर या शब्द में संयुक्त स्वर संबंधित सभी व्यंजनों को अलग-अलग अपना गुणात्मक मान प्रदान करता है और फिर मानों को जोड़ लिया जाता है।

उदाहरण (i) प्त=37, क्योंकि प=21 और त = 16

(ii) मखि = 225,
क्योंकि मखि = म + खि = $25 + 2 \times 100$

(iii) घिश्च = 476,
क्योंकि घिश्च = घि + श + च (नियम के अनुसार)
$= 4 \times 100 + 70 + 6$

(iv) ख्युघृ = 43, 20, 000,
क्योंकि ख्युघृ = खु + यु + घृ (नियम के अनुसार)
$= 2 \times 100^2 + 30 \times 100^2 + 4 \times 100^3$
$= 20000 + 300000 + 4000000$
$= 4320000$

जो एक महायुग में, आर्यभट के अनुसार, सूर्य के भगणों की संख्या है।

ज्यामिति के क्षेत्र में *आर्यभटीय* में सबसे बढ़िया चीज π का मान है। मूल नियम इस प्रकार कहा गया है—

चतुरधिकं शतमष्टगुणं द्वाषष्टिस्तथा सहस्राणाम् ।
अयुतद्वय विष्कम्भस्यासन्नो वृत्तपरिणाहः ।। 10 ।।

अर्थात्

"चार अधिक एक सौ, यानी 104 का आठ गुना और 62 हजार उस वृत्त की परिधि का आसन्न मान है जिसका व्यास दो अयुत है।"

यानी, यदि वृत्त का व्यास D = 2 अयुत = 20000

तो उसकी परिधि C = 62000 + 8X104 = 62832 लगभग

अतः π = C/d = 62832/20000

= 3.1416

जोकि 4 दशमलव स्थान तक π का सही मान है

व्यावहारिक दृष्टि से यह मान काफी सूक्ष्म है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि आर्यभट ने इसे आसन्न (Close) मान ही कहा वास्तविक (exact) नहीं। शायद उनको मालूम था कि वास्तविक मान अपरिमेय है। (अर्थात् दो पूर्णांकों की भिन्न से कदापि निरूपित नहीं किया जा सकता है), जैसा कि भाष्यकार नीलकंठ ने लिखा है।

आर्यभट ने इस मान को कैसे प्राप्त किया था, यह विदित नहीं है। अलबेरूनी ने लिखा है कि यह मान एक प्राचीन सिद्धांत पर आधारित था जिसके अनुसार तारों की परिधि का मान 1, 25, 66, 40,000 योजन और व्यास का 40,00,00,000 योजन था।

मान को यदि वितत भिन्न (Continued fraction) में लिखें तो

$$\pi = 3 + \cfrac{1}{7 + \cfrac{1}{16 + \cfrac{1}{11}}}$$

इससे विभिन्न अभिसारी लेने पर निम्नलिखित तीन अन्य मान प्राप्त होंगे।

(1) π =3; जो कि π का सरलतम मान कहा जा सकता है, और सभी प्राचीन सभ्यताओं में प्रयुक्त हुआ था।

(2) $\pi = 3\frac{1}{7} = \frac{22}{7}$; जिसे आर्किमिडीज मान कहते हैं।

(3) π = 355/113; जिसे चीनी मान कहते हैं।

त्सू (Tsu) ने यह सूक्ष्म मान ई. 5वीं सदी में दिया था।

त्रिकोणमिति के क्षेत्र में तो आर्यभट का योगदान बहुत ही महत्वपूर्ण है। उनके समय में भारतीय त्रिकोणमिति कुछ शताब्दी पुरानी हो चुकी थी, ऐसा लगता है।

पिछले अध्याय में हम बता चुके हैं कि आर्यभट ने निर्देश वृत्त के अर्धव्यास यानी त्रिज्या का मान 3438 कला लिया था। इस त्रिज्या के लिए *आर्यभटीय* में 24 ज्याखण्डों के मान दिये हैं, जिनसे एक ज्यासारणी आसानी से प्राप्त की जा सकती है। इसका सारणिक अंतर (tabular difference) कोणांक 90/24 अंश, अर्थात् 3°45' होगा। उपलब्ध भारतीय पौरुषेय ग्रन्थों में *आर्यभटीय* ऐसा सबसे प्राचीन है जिनमें हमें ज्यासारणियाँ मिलती हैं। इस प्रकार आर्यभट की ज्यासारणी विश्व के इतिहास में प्रथम ज्यासारणी मानी जा सकती है। इसके पूर्व यूनान में पूर्ण जीवा (Chords) की सारणी थी, ज्या (Sines) की नहीं। विशेषता यह है कि सारणी के सम्पूर्ण 24 ज्याखण्डों के मान केवल दो पंक्तियों के छन्द में निबद्ध हैं। यह आर्यभट की अपनी अक्षर संख्या प्रणाली के कारण संभव हो सका। इस प्रकार कोई भी अध्यापक विद्यार्थी या शोधार्थी पूरी सारणी को आसानी से याद रख सकता है। एक अन्य विशेष बात यह है कि इन खण्डों के उल्टे क्रम से जोड़ने पर हमें उत्क्रमज्या सारणी भी मिल जायेगी।

ज्याखण्डों से भरी वे दो पंक्तियाँ हैं–

मखि भखि फखि धखि णखि अखि ङखि हस्झ स्ककि किष्ग श्घकि किघ्व।
हलकि किग्र हक्य धकि किच स्ग श्झ ङ्व ल्क प्त फ छ कलार्धज्याः।।10।।

सुविधा के लिये इनके संख्यात्मक मान उनसे बनी ज्याएँ इत्यादि निम्न सारणी में प्रदर्शित किए गए हैं।

सारणी

क्रम सं.	कोण	खण्ड	मान	ज्या	शुद्ध खण्ड
1.	3^{0} 45'	मखि	225	225	224.86
2.	7^{0} 30'	भखि	224	449	223.89
3.	11^{0} 15'	फखि	222	671	221.97
4.	15^{0}	धखि	219	890	219.10
5.	18^{0} 45'	णखि	215	1105	215.29
6.	22^{0} 30'	अखि	210*	1315*	210.56
7.	26^{0} 15'	ङखि	205	1520*	204.92
8.	30^{0}	हस्झ	199*	1719	198.41
9.	33^{0} 45'	स्ककि	191	1910	191.05
10.	37^{0} 30'	किष्ग	183	2093	182.87
11.	41^{0} 15'	श्घकि	174	2267	173.91
12.	45^{0}	किघ्व	164	2431	164.20
13.	48^{0} 45'	घ्लकि	154	2585	153.80
14.	52^{0} 30'	किग्र	143	2728	142.72
15.	56^{0} 15'	हक्य	131	2859	131.04
16.	60^{0}	धकि	119	2978*	118.81
17.	63^{0} 45'	किच	106	3084*	106.05
18.	67^{0} 30'	स्ग	93	3177*	92.85
19.	71^{0} 15'	श्झ	79	3256	79.25

20.	75^0	ङ्व	65	3321	65.30
21.	78^0 45'	ल्क	51	3372	51.09
22.	82^0 30'	प्त	37	3409	36.65
23.	86^0 15'	फ	22	3431	22.05
24.	90^0	छ	7	3438=R	7.36

यह ध्यान देने की बात है कि 16वीं, 17वीं और 18वीं प्राप्त ज्याओं में +1 के अन्तर के लिए आर्यभट दोषी नहीं हैं, क्योंकि उनके सत्संबंधी खण्डों के मान सही हैं। खण्डों के मान पूर्णांकों तक लेने से जो संचित प्रभाव (accumulated effect) हुआ, उसी के कारण ये अशुद्धियाँ आईं।

आर्यभट ने सारणी तैयार करने की दो विधियों का उल्लेख किया है। एक तो किसी कोण A की ज्या से उसके आधे, A/2 की ज्या निकालने के त्रिकोणमितीय सूत्रों पर आधारित है। जिनमें से एक को इस प्रकार लिखा जा सकता है–

$$\text{ज्या } (A/2) = (1/2) \sqrt{(\text{ज्या } A)^2 + (\text{ उत्क्रम ज्या } A)^2}$$

उदाहरण के लिए 30^0 की ज्या (=R/2) से पहले 15^0 की ज्या निकाली गई और फिर उससे 7^0 30' और फिर 3^0 45' की। फिर 15^0 की ज्या से उसकी कोज्या निकाली जो 75^0 की ज्या हो जायेगी। इससे तथा इसी प्रकार अन्य ज्या तथा कोज्या से प्रारम्भ करके आधा करते जाने पर सभी 24 ज्याएँ निकाली गई थीं।

दूसरी विधि प्रथम खण्ड D_1 से प्रारम्भ करके क्रमशः अन्य खण्ड D_2, D_3,----- देने वाले निम्न सूत्र पर आधारित थी–

$$D_{n+1} = D_n - (D_1 + D_2 + \text{------} + D_n)/D_1$$

जहाँ D_1 का मान $90^0/24$ या 225' लिया गया है।

टीकाकारों ने इस सूत्र के अन्य रूप भी दिये हैं परन्तु कुछ व्यावहारिक अड़चनें आती हैं, क्योंकि सूत्र स्थूल है। फिर भी वह ज्याखण्डों के एक ऐसे गुण पर आधारित है जिसकी जानकारी उस समय के लिये बड़े श्रेय की बात थी। यह गुण ज्या खण्डों का अन्तर स्वयं ज्या के अनुलोम अनुपात में होता है।

उस समय त्रिकोणमिति का मुख्य उपयोग भूगोल तथा खगोल सम्बन्धी प्रश्नों के हल के लिये किया जाता था। आर्यभट ने भी ऐसा ही किया था।

बीजगणित के क्षेत्र में भी आर्यभट की मौलिक उपलब्धियाँ थीं। कुछ सूत्र तो उनके ग्रन्थों में प्रथम बार देखने को मिलते हैं। विशेष बात यह है कि उनकी विधियाँ और सूत्र काफी व्यापक थे।

आर्यभट ने प्राकृत संख्याओं 1, 2, 3, 4, -------- के वर्गों और घनों के योग के लिये जो सूत्र दिये हैं, उन्हें समझने के लिए पुरानी शब्दावली का ज्ञान होना जरूरी है। उन्होंने

(n पदों तक)

$(1+2+3+ \ldots\ldots + n)$,

$(1^2+2^2+3^2+ \ldots\ldots + n^2)$,

तथा $(1^3+2^3+3^3+ \ldots\ldots + n^3)$,

को क्रमशः चिति (चित्र 9.4 देखें और माचिस की डिब्बियों से इसे बनायें), वर्गचिति घन (वर्गाकर ठोस ढेरी) तथा घन-चिति धन कहा है।

आर्यभटीय के गणित पाद की 22वीं आर्या इस प्रकार है।

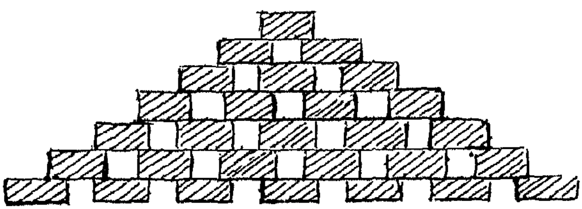
सैक-सगच्छ-पदानां-क्रमात् त्रिसंवर्गितस्य षष्ठोऽशः।

वर्गचिति घनः स भवेत, चिति वर्गो घनचिति घनश्च ।।22।।

अर्थात्

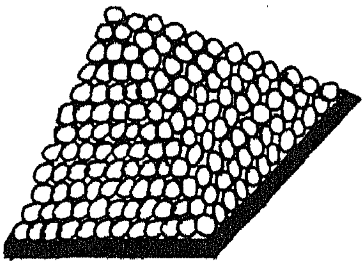
'पदों की संख्या, वह संख्या एक के साथ तथा इसमें भी पदों की संख्या का जोड़, इन तीनों के गुणनफल के छटे भाग के तुल्य वर्गचितिघन का मान होता है। घनचितिघन का मान चिति के वर्ग के तुल्य होता है।

अर्थात् $1^2+2^2+3^2+ \ldots\ldots + n^2 = \dfrac{n(n+1)(n+1+n)}{6}$



चित्र 9.4 माचिस की डिब्बियों की चिति

तथा $1^3 + 2^3 + 3^3 + \ldots\ldots + n^3 = (1+2+\ldots\ldots+n)^2$



चित्र 9.5

यहाँ 19वीं आर्या में दिये गये सूत्र– "आधन्तं पदार्ध हतम्" अर्थात् "पहले और अन्तिम पद के योग को पदों की संख्या के आधे से गुणन" को लगाकर

$1+ 2+ 3+\ldots\ldots+n = (1+n)n/2$

होता है।

वर्गचितिघन यानी वर्गाकार (लड्डुओं की ठोस ढेरी चित्र 9.5) में सबसे ऊपर 1, उसके नीचे 4, फिर उसके नीचे 9 और फिर इसी प्रकार और नीचे की परतों (layers) में $4^2, 5^2, 6^2, \ldots$ इत्यादि लड्डू होते हैं (चित्र 9.6)।

यदि परतों की संख्या (या सबसे नीचे की एक पंक्ति में लड्डुओं की संख्या) n हो तो सूत्र

$$n(n+1)\,(2n+1)/6$$

लगाकर लड्डुओं की कुल (total) संख्या दूर से ही बताई जा सकती है। त्रिभुजाकार ठोस ढेरी (पिरेमिड) में लड्डुओं की संख्या ऊपर से नीचे की विभिन्न परतों में (चित्र 9.7)। 1, (1+2), (1+2+3), (1+2+3+4), ... इत्यादि होगी। इसमें कुल संख्या निकालने का सूत्र है–

$$n(n+1)\,(n+2)\,/\,6$$

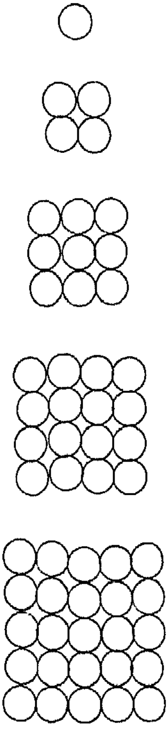
जो कि गणितपाद की 21वीं आर्या में दिया गया है।

समानान्तर श्रेणी (A.P) के योग का नियम सभी गणित के विद्यार्थियों को याद होगा, वह है–

$$a+ (a+d) + (a+2d) + \ldots\ldots + n \text{ पदों तक}$$

$$= \frac{n}{2}\,[2a + (n-1)\,d] = S, \text{ माना}$$

लेकिन यदि योग S दिया हो तो पदों की संख्या n कैसे मालूम की जाये। इसके लिए आर्यभट


चित्र 9.6

का सूत्र है (आर्या 20)।

$$n=\frac{1}{2}\left[\frac{\sqrt{8ds+(2a-d)^2}-2a}{d}+1\right]$$

इससे सिद्ध होता है कि आर्यभट के समय लोग बड़ी आसानी से कोई भी द्विघातीय समीकरण हल कर सकते थे।

अन्त में आर्यभट के एक विशेष योगदान की चर्चा करना उचित होगा। यह है प्रथम घातीय अनिर्णीत समीकरण (indeterminate equation)।

$$ax + k = by \quad (1)$$

को हल करने की उनकी व्यापक विधि। प्राचीन भारतीय गणित में यह विषय कुट्टक के नाम से प्रसिद्ध था। आर्यभट की विधि से हम इस प्रकार के मनोरंजक प्रश्न हल कर सकते हैं।

उदाहरण:

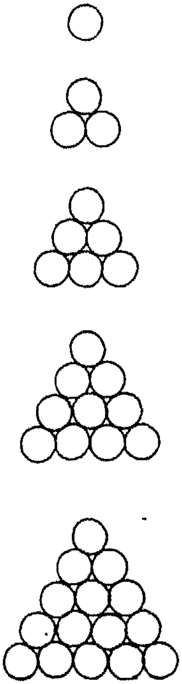
एक टोकरी में कुछ आम हैं। उनकी जब एक-एक दर्जन वाली ढेरियाँ बनाई जाती हैं तो 5 आम शेष बचते हैं। सबको फिर से इकट्ठा करने के बाद, यदि इकतीस-इकतीस आमों की ढेरियाँ बनाई जाती हैं, तो 7 आम शेष बचते हैं। बताओ कुल आम कितने हैं ?

मान लो कुल आम N हैं। तो N ऐसी संख्या है जिसे 12 से भाग देने पर 5 और 31 से भाग देने पर 7 शेष बचता है (प्रश्न के अनुसार)।
यदि भागफल क्रमशः x और y हों तो

$$N = 12x+5 = 31y+7 \quad (2)$$

यहाँ 5 और 7 को अग्र (residue) कहा गया है। अतः अग्रान्तर = 7–5=2

इष्ट संख्या N का मान निकालने के पहले हम समीकरण (2) में बड़े भाजक 31 को छोटे भाजक 12 से भाग देते हैं। शेष 7 बचता है। अब इस शेष 7 और भाजक 12, इन दो संख्याओं का 'आपसी विभाजन' (Mutual division) करते हैं ताकि भागफलों की संख्या सम हो।



चित्र 9.7

7) 12 (1 यह प्रथम भागफल है।
7
5) 7 (1 यह द्वितीय शेष है।
5
2 शेष ।

यहाँ अन्तिम भाजक 5 है। अब हम एक ऐसी राशि जिसे "मति" कहते है, की कल्पना करते हैं जिसे यदि अभी बचे शेष 2 से गुणा करके, अग्रान्तर 2 जोड़ें तो प्राप्त संख्या अन्तिम भाजक 5 से पूरी-पूरी कट जाये (भाग देने पर)।

स्पष्ट है कि ऐसी संख्या या मति 4 है, क्योंकि 4x2+2=10 जो कि 5 से भाग देने पर पूरी-पूरी कट जाती है। इस भाग में भागफल 10/5 =2 जिसे अन्तिम भागफल कह सकते हैं।

अब ऊपर किये गये, "आपसी विभाजन" के भागफलों, मति तथा अन्तिम भागफल को एक वल्ली या कॉलम (Column) में स्थापित करके उन पर आर्यभट की "अधउपरिगुणित - अन्त्ययुक्" विधि लगाते हैं। क्रिया इस प्रकार प्रदर्शित की जा सकती है–

	वल्ली		
प्रथम भागफल	1	1	10
द्वितीय भागफल	1	6	6
मति	4	4	
अन्तिम भागफल	2		

स्पष्टीकरण यूँ है। प्रथम कॉलम (वल्ली) में अन्त्य (संख्या) 2 है। इसे छोड़कर नीचे (अध) की संख्या 4 को उसके ऊपर (उपरि) की संख्या 1 से गुणा करके, गुणनफल में अन्त्य जोड़ दें (अन्त्ययुक्), तो 6 आया। इसे दूसरे कॉलम में ले गये। पहले कॉलम की बाकी अन्य संख्याएँ (अन्त्य को छोड़कर) भी दूसरे कॉलम में ले गये। इस प्रकार एक संख्या कम हो गयी। अब ठीक वही "अधउपरिगुणित अन्त्ययुक्" क्रिया दूसरे कॉलम पर

करेंगे (जिसमें अन्त्य 4 है)। इस प्रकार तीसरा कॉलम प्राप्त हो जाता है, क्योंकि $6 \times 1 + 4 = 10$

अब चूंकि तीसरे कॉलम में केवल दो ही संख्याएँ रह गईं, इसलिए यहीं रुक जायेंगे। अन्तिम कॉलम की चोटी की संख्या 10 समीकरण (2) में एक भागफल होगा (यहाँ y)

अतः उत्तर $N = 31 \times 10 + 7 = 317$

इस तरह हम पाते हैं कि टोकरी में 317 आम थे। एक-एक दर्जन की 26 ढेरियाँ बनने के बाद 5 आम शेष बचेंगे।

यह उदाहरण आर्यभट के प्रसिद्ध अनुयायी भास्कर प्रथम के *आर्यभटीय भाष्य* (ई. 629) पर आधारित है। अपनी इस अनिर्धारित समीकरणों को हल करने की क्षमता के कारण ही आर्यभट यह निकालने में सफल हुए थे कि कलियुग के प्रारम्भ में (ई.पूर्व 3102) सब ग्रहों की स्थिति अश्विनी नक्षत्र के प्रथम बिन्दु पर थी।

उनके द्वारा प्रतिपादित बहुत सी नवीन बातों में से एक थी उनका भूभ्रमणवाद। लेकिन लोग इस क्रान्तिकारी सिद्धांत को मानने के लिये तैयार न थे। अतः उनकी पुस्तक के मूलपाठ में ही "भू" के स्थान पर "भम" (तारे) लिख दिया गया। फिर भी गेलिलियो (Galileo) की तरह उनको न तो सताया गया और न ही सजा दी गयी।

अध्याय 10

चीन में भारतीय गणित, ज्योतिष और ज्योतिषी

ईसवी सन् 62 की बात है। चीन में हान राजवंश के महाराज मिंगती (Ming-Ti) राजमहल में सो रहे थे। उन्होंने स्वप्न में देखा कि एक विशिष्ट सुनहरे व्यक्ति ने हवाई मार्ग से महल में प्रवेश किया और फिर अदृश्य हो गया।

प्रातः काल होने पर राजा ने दरबार के बुद्धिमान ज्योतिषियों के समक्ष उस स्वप्न की चर्चा की। उन्होंने एकमत से कहा कि वह रहस्यमय सुनहरे व्यक्ति बुद्धदेव थे जो लोगों को आध्यात्मिक मार्ग दिखाकर सारे संसार में पूजे जा रहे हैं। अब तो राजा को भगवान बुद्ध और उनके चलाये धर्म को जानने की प्रबल इच्छा हुई और इसके लिए राजा ने भारतवर्ष के ही प्रमाणित स्रोतों को उपयुक्त समझा जहाँ बुद्ध अवतरित हुए थे।

सारा विश्व जानता है कि धार्मिक और आध्यात्मिक तत्वज्ञान में भारत सदैव अग्रणी रहा है। चाहे समय बुद्ध का हो या शंकराचार्य का अथवा विवेकानन्द का।

फिर क्या था। चीन नरेश ने एक राजकीय शिष्टमंडल को भारत भेजा। शिष्टमंडल का अभियान सफल हुआ। भारत के विख्यात आचार्य काश्यप मातंग और उनके सहयोगियों के साथ मंडल चीन वापस लौटा। आचार्य अपने साथ अनेक बौद्ध ग्रन्थ ले गये थे।



चित्र 10.1 भगवान बुद्ध

चीन नरेश मिंगती भारतीय आचार्य से बहुत प्रभावित हुए। राजधानी लोयांग में आचार्य काश्यप के लिए एक विशेष मठ बनाया गया। वहाँ रहकर आचार्य काश्यप ने अनेक बौद्ध ग्रन्थों क़ा चीनी भाषा में अनुवाद किया। धीरे-धीरे चीन में बौद्ध धर्म का काफी प्रचार होता गया और बड़ी संख्या में लोग उस धर्म के अनुयायी बन गये । छठी सदी में चीन में बौद्ध मठों की संख्या 30,000 और भिक्षुओं तथा भिक्षुणियों की संख्या 20 लाख थी।

वास्तव में आचार्य काश्यप मातंग के चीन में प्रभावशाली तथा सफल धार्मिक अभियान के साथ वहाँ एक ऐसे युग का श्रीगणेश हुआ जिसके अन्तर्गत भारत के सैकड़ों विद्वान जिनमें कुछ वैज्ञानिक भी थे, चीन गये और वे अपने साथ हजारों भारतीय ग्रन्थ ले गये। साथ ही साथ चीन से भी सैकड़ों विद्वान भारत की यात्रा पर आये और वे भी लौटते समय अपने साथ हजारों भारतीय ग्रन्थ ले गये। इन भारतीय ग्रन्थों का जो अधिकतर बौद्ध धर्म और दर्शन पर थे, बहुत जोरों से और बहुत संख्या में चीनी अनुवाद किया गया। यह सिलसिला अनेक शताब्दियों तक चलता रहा।

इस तरह बौद्ध धर्म के माध्यम से चीन में भारतीय संस्कृति का भी प्रचार हुआ। साथ में भारतीय विज्ञान की बहुत-सी बातों की जानकारी चीन देश के रहने वालों को हुई। इनमें भारतीय ज्योतिष और गणित की सामग्री भी सम्मिलित थी। भारतीय ज्योतिषियों का तो चीन में बहुत आदर होता था। वे वहाँ के उच्च्व पदों पर नियुक्त किये गये और उन्होंने चीनी पंचांगों को सुधारने में अपना योगदान दिया। चीन में भारत के गणितीय और ज्योतिषीय ज्ञान. के प्रचार की कथा का विस्तृत वर्णन अब नीचे दिया जाता है। आचार्य काश्यप मातंग ने भारतीय ग्रन्थों के चीनी भाषा में अनुवाद करने का जो सिलसिला प्रारम्भ किया था, वह उनके शिष्यों और अनुयायियों ने जारी रखा। लेकिन आदर देने के लिए उन्होंने प्राय: आचार्य मातंग के ही नाम का प्रयोग किया। परिणामस्वरूप हमें बाद के अनेक ग्रन्थ और अनुवाद आचार्य के नाम से जुड़े मिलते हैं। इनमें चीनी भाषा में अनुवादित *"मातंगावदान"* भी है। इसमें 28 भारतीय नक्षत्रों का उल्लेख है। भारतीय ज्योतिष में प्रयुक्त 12 अंगुल के शंकु से बने मासिक छाया मानों का भी वर्णन है। *मातंगीसूत्र* का चीनी अनुवाद चूलू-येन (Chu Lu-yen) ने किया था।



चित्र 10.2 काश्यप मातंग

ललितविस्तर और शार्दूलकर्णावदान

वैपुल्य सूत्र के अन्तर्गत आनेवाला ग्रन्थ *ललितविस्तर* बहुत प्रसिद्ध है जिसका संस्कृत मूल ई. पूर्व प्रथम सदी में लिखा गया था। इसके अनेक चीनी अनुवाद हुए, लेकिन सभी उपलब्ध नहीं हैं। प्राप्त अनुवादों में एक धर्मरक्ष (ल. 310 ई.) और दूसरा श्रमण दिवाकर (ल. 685 ई.) ने किया था। जो अनुवाद खो गये हैं, उनमें एक सुंग (Sung) राज्यकाल

में चू-येन (Chu - yen) तथा पाओयुन (Pao - yun) ने (5वीं सदी) में मिलकर किया था।

परमाणुवाद के विवेचन में बौद्धमतावलम्बियों ने सूक्ष्म माप के लिए अनेक संज्ञाओं का प्रतिपादन किया है। ललितविस्तर में ये इस प्रकार दी गई हैं (दरभंगा संस्करण, पृ. 104)।

7 परमाणु	=	1 अणु
7 अणु	=	1 त्रुति (त्रुटि)
7 त्रुति	=	1 वातायनरज
7 वातायनरज	=	1 शशरज
7 शशरज	=	1 एडकरज
7 एडकरज	=	1 गोरज
7 गोरज	=	1 लिक्षा
7 लिक्षा	=	1 सर्षप
7 सर्षप	=	1 यव
7 यव	=	1 अङ्गुलि-पर्व (अङ्गुल)

इस तालिका के अनुसार एक अंगुल (finger breadth) में 7^{10} परमाणुरज मान होंगे। अर्थात् परमाणु का व्यास लगभग 0.75×7^{-10} इंच माना गया था। आजकल के अनुमान से हाइड्रोजन परमाणु का व्यास लगभग 0.5×10^{-8} इंच है।

बड़ी-बड़ी संख्याओं तक गणना करने के लिए *ललितविस्तर* में शतगुणोत्तर प्रणाली दी गई है। इसमें नौ गणनाचक्र हैं। प्रथम चक्र में कोटि से आगे 23 संज्ञाएँ दी गई हैं, जिनमें अन्तिम तल्लक्षण है जो 10^{53} को निरूपित करता है। सम्पूर्ण चक्रों की गणना का अन्त 10^{421} जैसी विशाल संख्या पर होगा (विस्तार के लिये, अध्याय 3 देखें)।

ईत्सिंग (I-tsing) के अनुसार ई. 200 के आस पास 20 चीनी यात्री (पुरोहित) भारत आये जिनके लिये राजा श्रीगुप्त ने एक विशेष मन्दिर की व्यवस्था की थी।

ई. प्रथम शताब्दी (या उससे पहले) में रचित संस्कृत ग्रंथ *शार्दूल कर्णावदान* बहुत महत्वपूर्ण है। वह *दिव्यावदान* के अन्तर्गत आता है। *ललितविस्तर* की तरह, *शार्दूल कर्णावदान* के

अनेक चीनी अनुवाद हुए। पार्थिन राजकुमार आन शे-काओ (An Shi-Kao) (लोकोत्तम) का अनुवाद सबसे प्राचीन है। वे राज्य का परित्याग करके ई. 148 में चीन पहुँचे थे। एक विस्तृत अनुवाद भारतीय श्रमण चू लूह-येन(Chu Luh-yen) (जो उनका चीनी नाम था और तुखार के गृहस्थ चेकियां (Che Kien) ने मिलकर किया था। वह वु (Wu) शासनकाल में ई. सन् 223 से 253 के लगभग किया गया था।

ललितविस्तर के अनुवादक धर्मरक्ष ने *शार्दूल कर्णावदान* को भी चीनी भाषा में सविस्तार रूपान्तरित किया। उनका जन्म तुनहुआंग में हुआ था लेकिन शिक्षा भारत में जिसे पूरा करने के बाद वह ईसवी सन् 266 में चीन पहुंचे थे। लगभग 6 शताब्दी बाद *शार्दूल कर्णावदान* का तिब्बती अनुवाद अजित श्रीभद्र और शाक्यप्रभ ने ई 864 के आस पास किया था।

शार्दूल कर्णावदान का वैज्ञानिक महत्व उसमें दी हुई गणित और ज्योतिष संबंधी बातें हैं जिनका ज्ञान उसके चीनी अनुवादों द्वारा भारत से चीन पहुँचा। शान्तिनिकेतन संस्करण के अनुसार कुछ मुख्य बातें इस प्रकार हैं-

(1) *भारतीय नक्षत्रों की सूची (पृ. 46-52)* : भारत में ये नक्षत्र वैदिक काल से ही ज्ञात थे। चीनी अनुवाद में इन 28 नक्षत्रों की सूची कृतिका, रोहिणी से प्रारम्भ होकर अश्विनी, भरणी पर समाप्त होती है। प्रत्येक नक्षत्र के तारों की संख्या तथा उनके बारे में कुछ अन्य बातें भी दी गई हैं।

(2) *ग्रहों के नाम (पृ. 53 तथा 104)* : ग्रन्थ में केवल 7 ग्रहों (प्राचीन अर्थ में) अर्थात् शुक, बृहस्पति, शनि, बुध, मंगल, सूर्य और चन्द्र का उल्लेख है। इससे सिद्ध होता है कि राहु और केतु (जिनको मिलाकर परम्परागत "नवग्रह" होते हैं) का आविष्कार बाद में हुआ था। ग्रहों के जो दो क्रम दिये गये हैं वे भी अन्य सभ्यताओं में मुश्किल से मिलेंगे।

(3) *ललितविस्तर* की तरह यहाँ भी अंगुल से सूक्ष्म परमाणु स्तर तक के माप की प्रणाली दी गई है (पृ. 58), लेकिन अणु और वातायनराज के बीच की इकाई त्रुति गायब है।

(4) समय की छोटी माप के लिए दो पद्धतियाँ दी गई हैं (पृ. 54-57) जिनमें से एक के अनुसार

1 मुहूर्त (48 मिनट) = 30 लव = 30x60 क्षण = 30x60x120 तत्क्षण।

(5) *दिन और रात्रि का मान (पृ. 53 तथा 100-108)*: *वेदांग ज्योतिष* की तरह सबसे बड़ा दिन 18 और सबसे छोटा 12 मुहूर्त का उल्लेख है। औसतन एक मुहूर्त प्रतिमाह बढ़ने-घटने की बात कही गई है। कार्तिक और वैशाख में दिन-रात बराबर थे।

(6) *दिन के विभिन्न समयों में छाया (पृ. 54-55)* : सूर्योदय के बाद 7 मुहूर्तों में पौरुषी छाया के मान 96,60,12,6,5,4 और 3 दिये गये हैं। दिन के मध्य में (8वें मुहूर्त में) छाया लगभग स्थिर रहती थी। 15 मुहूर्त के दिन का उल्लेख होने से स्पष्ट है कि ये आँकड़े किसी विषुव दिन के हैं।

(7) *वर्ष के विभिन्न मासों में दोपहर की छाया (पृ. 100-103)* : 16 अंगुल ऊंचे शंकु के लिये दोपहर की छाया के मान 12 मासों के लिए दिये गये हैं जिनमें सबसे लम्बी छाया 12 अंगुल की माघ (जब दिन सबसे छोटा) और सबसे छोटी 1/2 अंगुल की श्रावण (जब दिन सबसे बड़ा) मास में होती थी। यह विश्वास करना कठिन है कि सभी छाया मान प्रयोग करके वेध किये गये थे। स्थान की स्थिति कर्क रेखा के उत्तर में मान सकते हैं।

प्रसिद्ध *कौटिल्य अर्थशास्त्र* में जो इस तरह की तालिका है उसमें शंकु की ऊंचाई 12 अंगुल ली गई है। सबसे छोटी (शून्य) छाया आषाढ़ में होती थी। यदि स्थान कर्क रेखा के दक्षिण में हो तो ऐसी स्थिति सबसे लम्बा दिन होने के पहले आ जायेगी।

नागार्जुन, वसुबन्धु, बोधिरुचि तथा परमार्थ

बौद्ध दर्शन के इतिहास में तर्कशास्त्री आचार्य नागार्जुन (ई. दूसरी शताब्दी) का नाम सबसे ज्यादा प्रसिद्ध है। वे शून्यवाद के प्रवर्तक थे। उनके मुख्य ग्रन्थ माध्यमिक शास्त्र का चीनी रूपान्तर *चुन-लुन* (Chun-Lun) के नाम से जाना जाता है। कुमार जीव (5वीं शताब्दी) ने उनकी जीवनी तथा *महाप्रज्ञापारमिता शास्त्र* का चीनी अनुवाद किया था।

भारतीय कल्पों की कल्पना जब चीन पहुंची तो उससे प्रभावित होकर हस्यू यो (Hsu Yo) ने बड़ी बड़ी संख्याओं में रुचि ली। उनके ग्रन्थ की टीका एक चीनी बौद्ध चेन लुआन (Chen Luan) ने की। वास्तव में बौद्ध धर्म का चीन में इतना अधिक बोलबाला था कि चीनी वैज्ञानिक, जैसे हानचाई (Han Chai) जो कि एक ज्योतिषी था, और टांग

फॅन (Wang Fan) जो एक गणितज्ञ था, भी बौद्ध बन गये (ई. 220 के आसपास)। योशिओ मिकामी (Mikami) की राय में वांग फॅन और अन्य चीनी गणितज्ञों ने वृत्त के गणित में जो रुचि लेनी प्रारम्भ की, वह भारतीय प्रभाव के कारण थी। मध्य भारत के धर्मकाल ई. 222 में चीन पहुंचे और *विनयपिटक* का चीनी अनुवाद किया। इसमें गणित के मुद्रागणित, गणनागणित, तथा संख्यान, ये तीन भेद बताये गये हैं।

आचार्य वसुबन्धु (ईसवी चौथी शताब्दी) ने बौद्ध जगत में इतनी ख्याति प्राप्त की कि लोग उन्हें द्वितीय बुद्ध कहने लगे। उनका रचित *अभिधर्मकोश* तो बस ज्ञान का खजाना है। इसने बौद्ध विचारधारा को सम्पूर्ण एशिया में फैलाया। नालन्दा महाविहार में उसका विशेष अध्ययन होता था जहां चीनी विद्यार्थी ताओ-लुन (जिसका भारतीय नाम शीलप्रभ था) और वोऊ-लुंग (Wou-Lung) ने उस शास्त्र का ज्ञान प्राप्त किया था (ई. 7वीं शताब्दी)।

अभिधर्मकोश का अनुवाद चीनी और तिब्बती दोनों भाषाओं में किया गया। आचार्य वसुबन्धु ने स्वयं उस पर भाष्य लिखा था, जिसकी पांडुलिपि पंडित राहुल सांकृत्यायन ने तिब्बत से खोज निकाली। यशोमित्र ने इस पर एक टीका लिखी थी।

अभिधर्मकोश और उसके भाष्य की वैज्ञानिक सामग्री का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार दिया जा सकता है (बौद्ध भारती संस्करण)।

(1) *अभिधर्मकोश* भाष्य से पता चलता है कि भारत में जो दशगुणोत्तर गणना प्रणाली चलती थी उसके लिये 60 संज्ञाएँ उपलब्ध थीं। एक आश्चर्यजनक बात यह है कि वसुबन्धु के समय के पूर्व ही बीच की आठ संज्ञाएँ लोग भूल चुके थे (विस्मृतम्)। बाकी 52 नाम थे -

एक, दश, शत, सहस्र, प्रमेद, लक्ष, अतिलक्ष, कोटि, मध्य, अयुत, महाअयुत ($=10^{10}$) इत्यादि से लेकर अन्त में बलाक्ष, महाबलाक्ष और असंख्येय ($=10^{59}$) तक । इनका उल्लेख कल्पों के मान के सम्बन्ध में किया गया है (पृ. 544-545)।

(2) माप की इकाइयों के लिये सूक्ष्म परमाणु रज (atomic particle) तक की गणना की तालिका (पृ. 536) थोड़े नाम परिवर्तन के साथ वही है जो *ललितविस्तर* में तथा समय के मान वही हैं जो *शार्दूल कर्णावदान* में।

(3) सृष्टि रचना के वर्णन में (पृ. 507-511) कहा गया है कि मध्य में स्थित सुमेरु पर्वत को बारी-बारी से घेरे एक केन्द्रिक (Concentric) वलयाकार सात समुद्र और सात पर्वत हैं। उन सबके बाद महोदधि है, जिसमें अन्तिम पर्वत के चारों ओर चार दिशाओं में चार द्वीप हैं। तीन द्वीपों का आकार वर्ग, वृत्त और अर्धवृत्त की तरह है और दक्षिण में स्थित चौथे द्वीप का संबंध भारत से है, जिसका नीचे का भाग त्रिभुजाकार है।

(4) ज्योतिष का वर्णन पुराणों के वर्णन से मिलता-जुलता है जिसमें सूर्य और चन्द्र की मेरु के चारों तरफ परिक्रमा करने की बात कही गई है। अन्य बहुत कुछ बातें *शार्दूल कर्णावदान* जैसी हैं, जैसे सबसे लम्बा दिन 18 और सबसे छोटा 12 मुहूर्त का दिया गया है। लेकिन यहाँ सबसे लम्बा दिन भाद्रपद और सबसे छोटा फाल्गुन मास में होने की बात कही गई है।

पाली ग्रन्थ *मिलिन्दपजह* या *मिलिन्दप्रश्न* का चीनी अनुवाद ई. सन् 317 और 420 के बीच में हुआ था। *विनयपिटक* की तरह इसमें भी गणित के तीन भेदों (मुद्रा, गणना और संख्यान) का उल्लेख है। पाली सुत्तपिटक की पाँच पुस्तकों में *मज्झिमनिकाय* दूसरी है। इसका चीनी रूपान्तर धर्मनन्दि ने ई. 384 और 391 के बीच किया था लेकिन वह लुप्त हो गया है। लेकिन उसके संस्कृत पाठ *मध्यमागम* से गौतम संघदेव (लगभग 400ई.) द्वारा किया चीनी अनुवाद सुरक्षित है। इसमें अंकगणित (गणना, संख्यान) को प्रमुख एवं श्रेष्ठतम कला माना गया है। इसी प्रकार *दीघनिकाय* संस्कृत रूपान्तर *दीर्घागम* का चीनी अनुवाद भारतीय भिक्षु बुद्धयश ने चू फो-नियेन (Chu Fo-nien) की मदद से ई. 412/413 में किया था। इसमें भी गणित के वही तीन भेद बतलाये गये हैं।

कुमार जीव का उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। उनकी शिक्षा कश्मीर में आचार्य बुद्धदत्त के अधीन हुई थी। वह चीनी सम्राट के निमंत्रण पर ई. 401 में वहाँ गया था। उन्होंने जो नागार्जुन कृत *महाप्रज्ञापारमिता शास्त्र* का अनुवाद (लगभग ई. 405 में) किया उसमें *वेदांगज्योतिष* की तरह 366 दिन का वर्ष तथा चान्द्रमासों का वर्णन है।

वास्तव में चौथी शताब्दी के अन्त और पांचवीं शताब्दी के प्रारम्भ में विद्याकेन्द्र के रूप में कश्मीर का नाम बौद्धजगत में शिखर पर था। वहां से अनेक विद्वान चीन गये थे जिनकी संख्या अन्य प्रान्तों से चीन गये भारतीय विद्वानों से अधिक थी। इनमें से कुछ के नाम

उल्लेखनीय हैं। जैसे, संघभूति (ई. 381-384), गौतम संघदेव (ई. 384-397), पुण्यप्रात (ई. 404), विमलाक्ष (406-413), बुद्धजीव (ई. 423), धर्ममित्र (ई. 424-442)। ऐसा लगता है कि उस समय कश्मीर स्थित विद्याकेन्द्र और चीनी शासन के बीच कोई विशेष समझौता था जिसके अधीन कश्मीर से नियमित रूप से विद्वान चीन जाते थे।

एक अन्य कश्मीर निवासी गुणवर्धन (जिसका ज़न्म राजवंश में हुआ था) बौद्धभिक्षु होने के बाद लंका होकर जावा गया था। चीनी सम्राट के निमंत्रण पर वह भारतीय वणिक नन्दिन् के जहाज से 431 में नानकिन पहुंचा जहाँ सम्राट ने स्वयं उसका स्वागत किया।

ई. 5वीं सदी में प्रसिद्ध चीनी यात्री फाहियान (Fa-Hien) भारत आया था। यहाँ रहकर उसने तीन वर्ष तक संस्कृत भाषा का ज्ञान प्राप्त किया। अपने यात्रा विवरण में उसने लिखा है कि यहाँ पर उस समय विनिमय में कौड़ियों का प्रयोग होता था। लौटते समय वह सैकड़ों भारतीय ग्रन्थ अपने साथ ले गया था। उसमें से कुछ का चीनी अनुवाद उसने भारतीय भिक्षु बुद्धभद्र के सहयोग से किया था। उधर चीन के अपने प्रसिद्ध गणितज्ञ सुन-त्जु (Sun Tzu) ने एक अंकगणित की पुस्तक लिखी जिसमें, अनेक प्रश्नों के संदर्भ में, बौद्ध ग्रन्थों का उल्लेख है। एक इतिहासज्ञ के अनुसार हिसयाहाऊ यांग (Hsiahou Yang) के अंकगणित में भिन्नों की जो संज्ञाएँ हैं वे भारत से प्रभावित मानी जाती हैं।

उत्तरी भारत के निवासी श्रमण बोधिरुचि प्रथम ई. सन् 508 में चीन पहुंचे। उन्होंने अन्य भारतीय तथा चीनी भिक्षुओं की मदद से कुछ भारतीय ज्योतिष ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद तैयार किया जिसमें 200 से अधिक अध्याय थे। ई.छठी शताब्दी के पूर्वार्ध में हुई-चिआओ (Hui-Chiao) ने प्रसिद्ध बौद्ध साधुओं की जीवनी पर एक संग्रह ग्रंथ लिखा। उसमें अनेक ऐसे भारतीयों का वर्णन है जो ई. सन् 67 और 519 के बीच में चीन में निवास करते थे। इस साढ़े चार सौ वर्षों की अवधि में लगभग डेढ़ हजार विभिन्न संस्कृत ग्रन्थों के चीनी अनुवाद की बात एक सूची ग्रन्थ में कही गयी है।

ई. सन् 541 में उपशून्य ने चीनी भाषा में *महारत्न कूट सूत्र* लिखा। इसमें एक भारतीय संख्या प्रणाली का वर्णन है। गन्धार निवासी नरेन्द्रयश और वाराणसी निवासी प्रज्ञारुचि के सुपुत्र धर्मज्ञान ने *चन्द्रप्रभा वैपुल्य, सुमेरुगर्भ,* और *चन्द्र द्वीप समाधी* का चीनी अनुवाद छी राजवंश (Chhi Dynasty) के काल में संपन्न किया। (6वीं सदी) इसी प्रकार ज्ञानभद्र

और जिनयश ने मिलकर *पंचविद्या* (व्याकरण, दर्शन, तर्कशास्त्र, वैद्यकी और प्रौद्योगिकी) पर लिखे एक ग्रन्थ का चीनी अनुवाद किया था।

सम्राट वू-टी (Wu - ti) के निमंत्रण पर आचार्य परमार्थ (पो-लो-मो-थो) ई. 548 में चीन पहुंचे। उनका जन्म (ल. 498 ई.) उज्जैन में तथा उच्च शिक्षा मगध में हुई थी। चीन में 20 वर्षों के अपने प्रवास में उन्होंने लगभग 70 भारतीय ग्रन्थों को चीनी भाषा में अनुवादित किया जिनमें *अभिधर्मकोश (व्याख्या) शास्त्र, अष्टादश शून्यता शास्त्र* और *सांख्यकारिका* मुख्य थे। वैज्ञानिक दृष्टि से महत्वपूर्ण ग्रन्थ *लोकस्थिति अभिधर्मशास्त्र* का चीनी अनुवाद उन्होंने ई. सन् 558 में किया। इसके प्रथम अध्याय *पृथ्वी की गति* पर और 19वां अध्याय *सूर्य और चन्द्र की गति* पर है जिसका उपयोग पंचांग बनाने में किया जाता था।

शुई (Sui) शासनकाल (ई. 581 से 618)

ई. सन् 581 में शुई राजवंश का शासन स्थापित होते ही चीन में बौद्ध धर्म को विशेष संरक्षण मिलने लगा। उसके पहले थोड़े समय के लिए वहाँ राजनैतिक अस्थिरता थी जिसके कारण कुछ भारतीय विद्वान मध्य एशिया चले गये। लेकिन अब उनको वापस लाने के प्रयत्न किये गये। सन् 581 में भारत से एक गायन मंडल भी चीन गया था।

नरेन्द्रयश ने ई. 582 में चीन पहुंचकर अनुवाद का कार्य पुनः प्रारम्भ कर दिया। अनुवादित ग्रन्थों में *सूर्य गर्भ* और *महावैपुल्य महासन्निपात सूत्र* मुख्य थे। इस सूत्र में कुछ ज्योतिषीय सामग्री भी थी। जैसे ग्रह-नक्षत्रों के योग, पंचांगकरण इत्यादि।

चीनी सम्राट के विशेष निमंत्रण पर जिनगुप्त भी चीन लौट गये। उनको अनुवाद परिषद् का अध्यक्ष बनाया गया। ई. 585 और 592 के बीच में लगभग 40 ग्रन्थों का चीनी अनुवाद किया गया। जिनगुप्त गन्धार के निवासी और जिनयश के शिष्य थे। अनुवाद कार्य में धर्मगुप्त ने जिनगुप्त की मदद की थी।

शुई राजवंश के प्रोत्साहन के कारण ही 37 वर्ष के छोटे से शासनकाल में लगभग 60 ग्रन्थों का अनुवाद सम्पन्न हुआ। उस समय चीन में उपलब्ध भारतीय ग्रन्थों की अनेक सूचियाँ (Catalogues) भी तैयार की गई। पहली सूची फा-चिंग (Fa - Ching) ने कुछ अन्य लोगों के सहयोग से सन् 594 ई. में बनाई। इसमें 2257 भिन्न-भिन्न ग्रन्थों का

वर्णन है। दूसरी "त्रिरत्न सूची" (ई. 597) में 1076 और तीसरी "शुईसूची" (ई. 603) में 2109 ग्रन्थों का उल्लेख है। कुछ अन्य तैयार की गयी सूचियाँ लुप्त हो गई हैं।

बाद में ई. सन् 636 और 656 के बीच में वाई-चेंग (Wei Cheng, also called Weichih) ने शुई राजवंश का प्रामाणिक इतिहास *शुई-शु* (Shui Shu) के नाम से लिखा। इसमें मूल भारतीय ज्योतिष तथा गणित ग्रन्थों के निम्नलिखित चीनी अनुवादों का उल्लेख है।

(1) पोलोमेंन थिएन वेन चिंग (Po-Lo-mên Thein Wên Ching) (ब्राह्मज्योतिष शास्त्र), 21 पुस्तकों में।

(2) पोलोमेंन चिएह-छिएह सिएन-जेन थिएन वेन शुओ (Polomên chieh-chhieh Hsien - jen Thien Wên Shuo) (पंडित चिएह-छिएह के ज्योतिष सिद्धांत) 30 पुस्तकों में।

(3) पोलोमेंन थिएन चिंग (Po-lo-mên Thien Ching) (ब्राह्मआकाशीय शास्त्र), 1 पुस्तक।

(4) मो-तेंग-चिअ चिंग हुआंग-थु (Mo-teng-chia ching Huan-thu) (मातंगी सूत्र में आकाश का मानचित्र), 1 पुस्तक।

(5) पो-लो-मेंन सुआन चिंग (Po-lo-mên Suan Ching) (ब्राह्मअंकगणित शास्त्र), 3 पुस्तकों में।

(6) पो-लो-मेंन सुआन फा (Po-lo-mên Suan Fa) (ब्राह्मअंकगणितीय नियम), 1 पुस्तक।

(7) पो-लो-मेंन यिंग यांग सुआन चिंग (Po-lo-mên, Ying Yang Suang Ching) (ब्राह्मकाल निर्णय शास्त्र), 1 पुस्तक।

दुर्भाग्य से ये सभी पुस्तकें अब लुप्त हो गई हैं। लेकिन उनका उल्लेख ई. 12वीं शताब्दी में तैयार की गई राजकीय पुस्तकालय की सूची में भी है। यह सूची चेंग छिआओ कृत *थुंगचिह लुएह* (Thung chih Lueh) (ऐतिहासिक संग्रह) में है। इससे स्पष्ट है कि उपयुक्त ग्रन्थ 12वीं सदी तक सुरक्षित थे, परन्तु बाद में कहीं गायब हो गये।

थांग राजवंश का स्वर्णयुग (618-904)

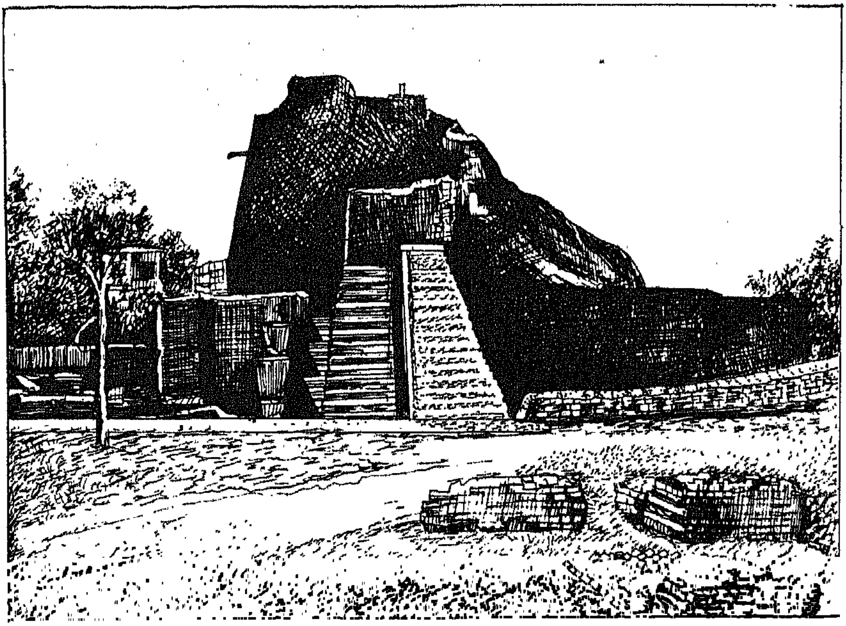
थांग (Thang) वंश की स्थापना (ई. 618) एवं राजकीय एकीकरण से चीन में बौद्धधर्म और भारतीय संस्कृति बड़ी लाभकारी सिद्ध हुई। 300 वर्षों के इस लम्बे राजवंशीय काल (618-907) में भारत-चीन राजनैतिक एवं सांस्कृतिक संबंध अपनी चरम सीमा पर पहुंच गये। नालन्दा महाविहार (University) की एक अन्तर्राष्ट्रीय विद्याकेन्द्र के रूप में ख्याति अपने सर्वोच्च शिखर पर थी। उस समय वहाँ लगभग 10000 (दस हजार) विद्यार्थी और 1500 प्राध्यापक ज्ञान की साधना करते थे। प्रसिद्ध चीनी यात्री युआन च्वांग (Yuan chwang, also called Huien Tsang) ने वहाँ अनेक वर्षों (लगभग 635 से 640) तक ज्ञानार्जन किया था। और बाद में उसका आँखों देखा हाल लिपिवद्ध किया था। चीन लौटते समय वह हजारों भारतीय ग्रंथ अपने साथ ले गया, जिनके ढोने के लिए उसे 22 घोड़ों की आवश्यकता पड़ी थी। शरीर त्यागने से पहले 75 ग्रन्थों का अनुवाद तो उसने स्वयं किया।



चित्र 10.3 युआन च्वांग

सम्राट हर्षवर्धन ने ई. 641 में एक राजदूत चीन भेजा जिसकी वापसी में वहाँ से दो प्रतिनिधि मंडल भारत आये। वास्तव में उस समय चीन में भारत के प्रति बहुत रुचि थी। धर्मगुरु होने से उसको बड़ा आदर मिलता था। सन् 664 में ताओ-सुएन (Tao-Suen) ने 2487 बौद्ध ग्रन्थों की एक बृहत सूची तैयार की जिसमें प्रत्येक लेखक की जीवनी भी संक्षेप में दी गई। चार वर्ष बाद ताओ-शिह (Tao-Shih) ने चीनी भाषा में एक बौद्ध ज्ञानकोश प्रस्तुत किया जिसका नाम था "धर्म के उद्यान में मोतियों का वन"।

धर्म-धुरन्धरों के साथ साथ चीन में भारतीय वैज्ञानिकों का भी स्वागत होता था। सन् 648 में चीनी भिक्षु ह्सुआन-छाओ ने भारत आकर 'ज्ञानार्जन तो किया ही, साथ में अपने देश के लिये कुछ भारतीय वैज्ञानिकों की सेवायें पाने में भारत स्थित चीनी राजदूत वांग



चित्र 10.4 नालन्दा महाविहार के भग्नावशेष

ह्सुआन (Wang Hsuan) की मदद की।

7वीं शताब्दी में कोई 60 चीनी भिक्षु भारत आये थे जिनका वर्णन चीनी स्रोतों में प्राप्त है। एक प्रमुख यात्री ईत्सिंग ने नालन्दा महाविहार में 10 वर्षों (लगभग ई. 674 से 684) तक अध्ययन किया था। लौटते समय वह 400 ग्रन्थ ले गया था। जिनमें से 56 का अनुवाद उसने स्वयं किया। उसने एक संस्कृत-चीनी शब्दकोश भी तैयार किया था। उसके समकालीन

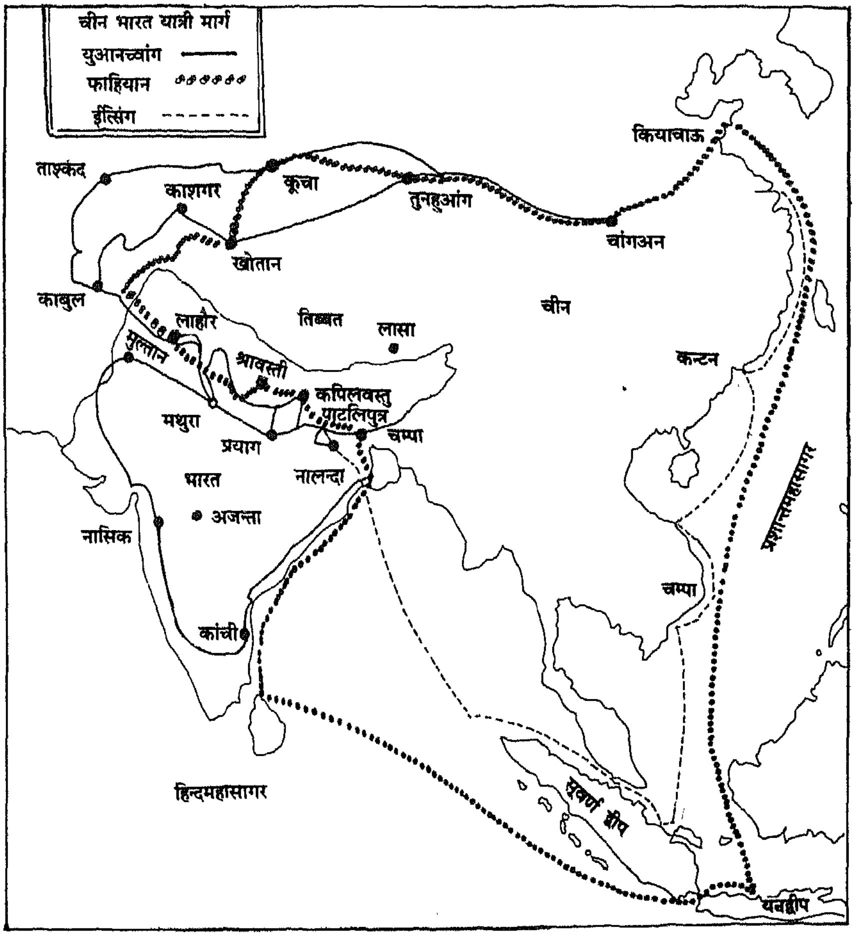
बोधिरुचि द्वितीय सन् 693 में चीन गये थे। वास्तव में उन्होंने ऐसा दक्षिण भारत के चालुक्य शासक के यहाँ आये चीनी राजदूत के निमंत्रण पर किया था। उनका मूल नाम धर्मरुचि था, लेकिन चीन की महारानी वू-त्सो-थिएन (684-705) ने उनका नाम बदल दिया। इसी महारानी के आदेश से एक नई ग्रन्थ सूची भी तैयार की गयी जिसमें 3616 भारतीय गन्थों का उल्लेख है । बोधिरुचि ने *महारत्नकूट सूत्र* का चीनी भाषा में एक नया संस्करण तैयार किया ।

थांग वंश के शासन में भारतीय ज्योतिष का चीन पर बहुत बड़ा प्रभाव था। उस समय वहाँ की राजधानी चांग-नान में अनेक भारतीय ज्योतिषी कार्यरत थे और वहाँ एक पाठशाला में सिद्धान्त ज्योतिष की शिक्षा दी जाती थी।

वास्तव में वहाँ जो भारतीय ज्योतिषी थे, वे तीन परिवार के थे—काश्यप, गौतम, और कुमार। ये ज्योतिषी चीनी राष्ट्रीय ज्योतिषीय परिषद् के सदस्य थे। प्रथम परिवार के काश्यप ह्सिआओ-वाई (Hsiao - wei) पंचांग में निपुण थे। उन्होंने वर्ष 664-665 के लिन-टे (Lin - Tê) पंचांग को तैयार करने में ली शुन-फेंग (Li shun-feng) की मदद की थी।

थांग वंश के प्रामाणिक इतिहास थांग-शू (Thang Shu) में गौतम परिवार के चार ज्योतिषियों के नामों का उल्लेख है जो ज्योतिष परिषद् के पदाधिकारी थे। गौतम लो (Lo) परिषद् के सभापति थे। उन्होंने सन् 697 और 698 के लिए पंचांग बनाये थे। उनकी पंचांग पद्धति का नाम कुआंग-चाई (Kuang-chai) था। वे सन् 698 में वहाँ की राष्ट्रीय वेधशाला के निदेशक पद पर नियुक्त हुए।

पंचांग विज्ञान में सबसे ज्यादा पारंगत भारतीय विद्वान गौतम सिद्ध (या सिद्धार्थ) थे जो चीन की ज्योतिष परिषद् के सभापति और वेधशाला के निदेशक बने। सम्राट ह्सुआन-त्सुंग (Hsuan - tsung) के आदेश से उन्होंने सन् 718 में संस्कृत ग्रन्थों के आधार पर *नवग्रहकरण* (चीनी भाषा में) की रचना की जिसका चीनी नाम *च्यूचीह ली* (Chiu Chih Li) था। नौग्रहों में लो-होउ (Lo-hou) और चि-तु (Chi - tu) भी थे जो स्पष्टतया संस्कृत के राहु और केतु के चीनी रूप हैं। लगभग दस वर्ष बाद गौतम सिद्ध ने 120 अध्यायों में एक विशाल ज्योतिष ग्रंथ का संग्रह किया। लेकिन साधारण जनता से उसे दर रखा



चित्र 10.5 चीन-भारत यात्री मार्ग

जाता था। बहुत बाद में उसकी पांडुलिपि की एक प्रति बुद्ध की मूर्ति में छिपी हुई मिली। उसका 104वाँ अध्याय भारतीय ज्योतिष पर आधारित च्यू चीह ली था।

लगभग दस वर्ष पूर्व जापान के प्राध्यापक यबूति कियोसी (Y. Kiyosi) ने च्यू चीह

ली पर विशेष शोध किया, और उसका अंग्रेजी अनुवाद *एक्टा एशियाटिका* (Acta Asiatica) पत्रिका में प्रकाशित किया (1979)। उनके अध्ययन के आधार पर कुछ तथ्य इस प्रकार हैं। *च्यू चीह ली* की विधियों का आदि कर्ता ब्रह्म को माना गया है, और उसमें प्रतिपादित ज्योतिषीय सामग्री मुख्यतः वराहमिहिर कृत *पंचसिद्धान्तिका* (छठी सदी) पर आधारित है। ग्रंथ में भारतीय दशमिक स्थान-मान प्रणाली का प्रयोग किया गया है, लेकिन शून्य को एक मोटे बिन्दु (thick dot) यानि, "●" से निरूपित किया गया है। इस ग्रन्थ के माध्यम से भारतीय त्रिकोणमिति का ज्ञान चीन पहुंचा जिसमें मानक ज्यासारणी (R = 3438 और h = 225 कला) सम्मिलित है। सूर्य और चन्द्रमा के ग्रहणों की भारतीय गणना का चीन में विशेष आदर था, क्योंकि वह वहाँ की पद्धति से बहुत विकसित थी।

चीन के तान्त्रिक बौद्ध ई-सिंग (I - Hsing) ने भारतीय ज्योतिष और त्रिकोणमिति का पूरा लाभ उठाया। सन् 724 में किये गये सर्वेक्षण के आंकड़ों का विश्लेषण उसने सफलता पूर्वक किया। भारतीय ज्याओं के आधार पर उसने संसार की पहली स्पर्शज्या (tangent) सारणी बनाई।

नालन्दा के आचार्य वज्रबोधि के शिष्य अमोघवज्र (मृत्यु 774) दूसरी बार चीन गये और लगभग 80 पुस्तकों का चीनी भाषा में अनुवाद किया। मध्य एशिया में अरबों के प्रवेश से राजनैतिक परिस्थितियाँ बदल गईं। नवीं शताब्दी से भारत और चीन के बीच के सम्पर्क में कमी आयी। सन् 973 में नालन्दा से धर्मदेव चीन गये। अपने चीनी नाम फा-तिएन (Fa-Tien) से उन्होंने अनेक संस्कृत ग्रंथों का अनुवाद किया।

ग्यारहवीं शताब्दी समाप्त होते होते, प्राचीन भारत और चीन के ये मधुर सम्बन्ध भी अनेक शताब्दियों के लिये प्रायः समाप्त हो गये।